शरणागत

(कहानी-संग्रह)

वृन्दावनलाल वर्मा

(लेखक: झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, गढकुंडार, विराटा की पद्मिनी, कचनार, अचल मेरा कोई, हंस-मयूर, राखी की लाज, मृगनयनी, पूर्व की ओर आदि आदि)

प्रथम संस्करण

मयूर-प्रकाशन
झांसी।

मूल्य १।)

प्रकाशक:
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल-एल. बी.,
मयूर-प्रकाशन, झांसी।

प्रथमावृत्ति १९५०

मूल्य १।) रुपया

मुद्रक—
द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश'
स्वाधीन प्रेस, झांसी।

शरणागत

	कहानियां	पृष्ठ संख्या
१	शरणागत	१—९
२	कटा फटा झंडा	१०—१२
३	तिरंगे वाली राखी	१३—१६
४	हमीदा	१७—२४
५	अण्णा जी पंत	२५—३३
६	मालिश ! मालिश !!	३४—३८
७	मेरा अपराध ?	३९—४३
८	राखी	४४—५८
९	झकोला चारपाई	५९—६२
१०	अपनी बीती	६३—७२
११	रिहाई तलवार की धार पर	७३—७७
१२	महज़ एक मामूली सवार	७८—८०
१३	तोषी	८१—८७
१४	सुअर	८८—९४
१५	नैतिक स्तर	९५—९९
१६	रक्त-दान	१००—१०७
१७	घायल सिपाही	१०८—११०

शरणागत

रज्जब अपना रोज़गार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ में दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफ़ी दूर था, बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिये उसने मड़पुरा नामक गांव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी स्त्री को बुखार हो आया था, रकम पास में थी और बैलगाड़ी किराये पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता था। इसलिये रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहां? जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियाँ डाले थी और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गांव के बहुत से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद ले जा चुका था।

अपने जानकारों से उसने रातभर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके छिपे बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरें फैल जातीं। इसीलिये सबों ने इनकार कर दिया।

गाँव में एक ग़रीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसको किसान जोते हुये थे, गाँठ में हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को

किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गाँव वाले 'गढ़ी' के आदर व्यञ्जक शब्द से पुकारा करते थे, और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधित करते थे। शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर ज्वर-ग्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा। ठाकुर पौर में बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा, 'दाऊजू. एक विनती है।'

ठाकुर ने बिना एक रत्ती भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा, 'क्या ?'

रज्जब बोला, 'मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूं। मेरी औरत को ज़ोर से बुखार आ गया है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिये रात भर के लिये कहीं दो हाथ की जगह दे दी जाय।'

ठाकुर ने प्रश्न किया, 'कौन लोग हो ?'

'हूँ तो कसाई।' रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—'जानता है, यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?'

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा, 'यह राजा का घर है, इसलिये शरण में आया हूँ।'

तुरन्त ठाकुर की आंखों से कठोरता ग़ायब हो गई। ज़रा नरम स्वर में बोला, 'किसी ने तुझको बसेरा नहीं दिया ?'

'नहीं, महाराज।' रज्जब ने उत्तर दिया, 'बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।' और वह दरवाजे के बाहर ही, एक कौने से चिपट कर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, कांपती हुई गठरी-सी बनकर सिमट गई। ठाकुर ने कहा, 'तुम अपनी चिलम लिये हो ?'

'हाँ, सरकार।' रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—'तब भीतर आ जाओ और तमाखू अपनी चिलम में पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कौने में पड़े रहना।'

जब वे दोनों भीतर आ गये ठाकुर ने पूछा, 'तुम कब यहां से उठ कर चले जाओगे?'

जवाब मिला—'अन्धेरे में ही, महाराज! खाने के लिये रोटियाँ बांधे हूं, इसलिये पकाने की ज़रूरत न पड़ेगी।'

'तुम्हारा नाम?'

'रज्जब।'

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा, 'कहाँ से आ रहे हो?'

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

'वहाँ किस लिये गये थे?'

'अपने रोजगार के लिये।'

'काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।'

'क्या करूँ? पेट के लिये करना ही पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिये जो रोजगार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।'

'क्या नफ़ा हुआ?' प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा संकोच हुआ, और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर।

रज्जब ने जवाब दिया, 'महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है—यों ही—' ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला, 'बड़े भोर उठ कर चला जाऊँगा। तब तक घर के लोगों की तबियत भी अच्छी हो जायगी।'

इसके बाद दिन भर के थके हुये पति-पत्नी सो गये। काफ़ी रात गये कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। फटी-सी रजाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा, 'दाऊजू, आज तो ख़ाली हाथ लौटे हैं। कल सन्ध्या का सगुन बैठा है।'

ठाकुर ने कहा, 'आज ज़रूरत थी। ख़ैर, कल देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था?'

'हां,' आगन्तुक बोला, 'एक कसाई रुपये की पोट बांधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे।'

'ज़रा जल्दी', ठाकुर ने घृणा सूचक स्वर में कहा, 'कसाई का पैसा न छुयेंगे?'

'क्यों?'

'बुरी कमाई है।'

'उसके रुपयों पर कसाई थोड़े ही लिखा है?'

'परन्तु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।'

'रुपया तो दूसरों का ही है। कसाई के हाथ में आने से रुपये कसाई नहीं हुये।'

'मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।'

'हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।'

ज्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने कुछ सोच कर अपने साथियों को बाहर का बाहर टाल दिया।

भीतर देखा कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी।

ठाकुर भी सो गया।

सबेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हलका हो गया था, परन्तु शरीर भर में पीड़ा थी, और वह एक क़दम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देखकर कुपित हो गया।

रज्जब से बोला, 'मैंने खूब मिहमान इकट्ठे किये हैं। गाँव भर थोड़ी देर में तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देखकर तरह तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ। इसी समय।'

रज्जब ने बहुत विनती की, परन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके भी मन पर था। इसलिये रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक पेड़ के नीचे आ बैठा, और हिन्दू-मात्र को मन ही मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर आध पहर में उसकी पत्नी की तबियत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि पैदल यात्रा कर सकेगी, परन्तु ऐसा न हुआ। तब उसने एक गाड़ी किराये पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिये राजी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को ज़ोर का बुखार हो आया। वह जाड़े के मारे थर-थर काँप रही थी—इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न पड़ी। चलने में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिये यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक उस बेचारी की कम से कम कपकपी बन्द न हो जाय।

घण्टे-डेढ़-घण्टे बाद उसकी कपकपी बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज़ हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाला और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला, 'दिन भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो!'

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिये कहा।

वह बोला, इतने किराये में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूँ।'

रज्जब ने दांत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा, 'भाई आफत सब के ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है,

जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।'

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ीवान को हँसी आ गई। उसको टस-से-मस न होता देखकर रज्जब ने और पैसे दिये। तब उसने गाड़ी हाँकी।

पाँच छः मील चलने के बाद सन्ध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार की वजह से अन्टी का बोझ कम कर देना पड़ा है। और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही देने पड़े थे। उसको गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया:—

'गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।'

'बहुत दूर। वहीं ठहरेंगे।'

'किसके यहाँ?'

'किसी के यहां भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सबेरे ललितपुर चलेंगे।'

'कल का फिर पैसा मांग उठना।'

'कैसे मांग उठूँगा? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे मांगूँगा?'

'जैसे आज गांव में हठ करके माँगा था। बेटा, ललितपुर होता तो बतला देता।'

'क्या बतला देते? क्या सेंतमेंत गाड़ी में बैठना चाहते थे?'

'क्यों बे, रुपये लेकर भी सेंतमेंत का बैठना कहता है ? जानता है मेरा नाम रज्जब है; अगर बीच में गड़बड़ करेगा तो यहीं छुरी से काट कर फेंक दूँगा।'

रज्जब क्रोध को प्रकट करना नहीं चाहता था, परन्तु शायद अकारण ही वह भली भांति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर उधर देखा। अन्धेरा हो गया था। चारों ओर सुनसान था। आसपास झाड़ी खड़ी थीं। ऐसा जान पड़ता था कहीं से कोई अब निकला, और अब निकला! रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी कांप गईं। ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों को उसकी ठण्डी छुरी छू रही हो। गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा। उसने सोचा—गाँव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा, और हल्ला-गुल्ला करके गाँव वालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुटालूँगा। रुपये पैसे भले ही वापस कर दूँ, परन्तु और आगे न जाऊँगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले!

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खड़े हो गये। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिये ज़रा अकड़कर गाड़ीवान से बोला, 'क्यों बे बदमाश, सो गया क्या?'

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी के कठोर कण्ठ से निकला, 'खबरदार, जो आगे बढ़ा।'

रज्जब ने सामने देखा चार पाँच आदमी बड़े बड़े लट्ठ बाँधकर न जाने कहाँ से आ गये हैं। तुरन्त ही उनमें से एक ने बैलों की जुआरी पर एक लट्ठ पटका और दो दायें बायें आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गये। गाड़ीवान गाड़ी छोड़ कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला, 'मालिक मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।'

'यह कौन है? एक ने गरज कर पूछा।'

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुये बहुतही विनम्र स्वर में कहा, 'मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिये।'

उन में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी।

गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसे पकड़ लिया। तब उसका मुँह खुला। बोला, 'महाराज, मुझको छोड़ दो। में तो किराये पर गाड़ी लिये जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिये तीन–चार आने पैसे ही हैं।'

'और यह कौन है? बतला।' उन लोगों में से एक ने पूछा। गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया, 'ललितपुर का एक कसाई।'

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठी वाले के मुँह से निकला, 'तुम कसाई हो? सच बतलाओ।'

'हां महाराज,' रज्जब ने सहसा उत्तर दिया, 'मैं बहुत गरीब हूँ। हाथ जोड़ता हूँ, मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है!'

औरत ज़ोर से कराही।

लाठी वाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा, 'इसका नाम रज्जब है। छोड़ो। चलें यहाँ से।'

उसने न माना। बोला, 'इसका खोपड़ा चकनाचूर करो, दाऊजू, यदि ऐसे न माने तो। असाई कसाई हम कुछ नहीं मानते।'

'छोड़ना ही पड़ेगा।' उसने कहा, 'इस पर हाथ नहीं पसारेंगे और न पैसा ही छुयेंगे।'

दूसरा बोला, 'क्या कसाई होने से? दाऊजू, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं—मैं देखता हूं।' और तुरन्त लाठी लेकर गाड़ी में चढ़ गया। लाठी का एक सिर रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया पैसा निकालकर देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुये उस व्यक्ति ने ज़रा

तीव्र स्वर से कहा, 'नीचे उतर आओ। उससे मत बोलो, उसकी औरत बीमार है।'

'हो, मेरी बला से।' गाड़ी में चढ़े हुये लठैत ने उत्तर दिया। 'मैं कसाइयों की दवा हूँ।' और उसने रज्जब को फिर धमकी दी। नीचे खड़े हुये उस व्यक्ति ने कहा, 'खबरदार, जो उसे छुआ! नीचे उतरो नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।'

गाड़ीवान लठैत झख-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा, 'सब लोग अपने घर जाओ। राहगीरों को तङ्ग मत करो।' फिर गाड़ीवान से बोला, 'जा रे, हाँक ले जा गाड़ी, ठिकाने तक पहुँचा आना तब लौटना। नहीं तो अपनी खैर मत समझियो। और तुम दोनों में से किसी ने भी कभी इस बात की चर्चा कहीं की, तो भूसी की आग में जलाकर खाक कर दूँगा।'

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर में कहा।

'दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।'

दाऊजू ने कहा, 'न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुज़रता हूँ। परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात की गाँठ बाँध लेना।'

कटा--फटा झण्डा

(१)

१५-८-४७ को स्थान-स्थान पर तिरंगे झंडों का फहराता हुआ जंगल-सा दिखलाई पड़ता था। त्याग, तपस्या, भावना, वांछा में रंग-बिरंगे फूल लग गये थे। जनता अपने राष्ट्रीय झंडे की लहरों पर मुग्ध हो-हो जा रही थी। बड़ी-बड़ी पक्की इमारतों पर झंडे, घास-फूस की झोपड़ियों पर यहाँ तक कि पुराने खँडहरों पर भी। उस दिन भारतीय सेना के सैनिक, पुलिस और गवर्नर जनरल से लेकर छुटभइय्ये अङ्गरेज़ तक तिरंगे को प्रणाम और विनय समर्पित कर रहे थे।

प्रमोदचन्द्र ने फूलकर अपने साथी से कहा--'यह हमारे आज़ाद होने का प्रतीक है, वल्लभ!'

वल्लभ बोला—'हाँ, आज़ाद होने का, केवल आज़ाद होने का।'

'यह केवल कैसा?'

'हां, आज़ाद होने मात्र का, आज़ादी का नहीं। वह कुछ दूर है।'

आनन्द मनाते-मनाते लोग थक गये—मनाते रहे, मग्न होते रहे, थकते रहे थकते-थकते सोते रहे। पानी बरसा, बरसता रहा। अधिकांश झंडों का रंग फीका पड़ गया, बहुतेरों का तो फक ही हो गया। अनेक फट गये, परन्तु वे सब अपने-अपने स्थान पर फहराते रहे। जहाँ जाइये वहाँ अधिकांश झंडे तीर्थों के पुराने-धुराने सड़ियल पण्डों के फटियल निशानों की तरह।

इनको देखकर वल्लभ ने अपने मित्र से कहा—'राष्ट्रीय पताकाओं की इस प्रकार उपेक्षा करने वालों पर, मेरा बस चले तो, मुक़द्दमा चला दूँ।'

'ये पताकाएँ जनता की उमङ्गों के चिन्ह हैं।' उसके मित्र ने सम्मति दी।

'तो अब ये झंडे उन उमङ्गों के प्रतीक हैं, जो ढल गई हैं, भदरंगी हो गई हैं, फट गई हैं।'

'प्रतीक तो झंडा आज़ाद होने का है।'

और उन उमंगो का चिन्ह भी है, जो थीं, और अब विलीनप्राय हो गई हैं।'

यह तुम्हारी ज्यादती है।'

(२)

दङ्गे फ़साद बढ़ गये। मुसलमानो ने हिंदुओं को मारा, हिन्दुओं ने मुसलमानों को। जब जिसको जैसा अवसर मिला उसने वैसी मनमानी की। वल्लभ ऐसे मुहल्ले मे रहता था, जिसकी बहुसंख्यक आबादी मुसलमानों की थी। भले मुसलमानों के मना करते-करते समाज के तैशख़ोर और गुण्डा-अङ्ग मुसलमानों ने उस मुहल्ले की हिन्दू बस्ती पर आक्रमण कर दिया। आत्मरक्षा और जवाब देने के लिये हिन्दू भी निकल पड़े। वल्लभ ने देखा अब रक्तपात हुआ चाहता है। वह अपना हथियार सँभाल-कर घर से निकल पड़ा। हाथ में छोटा-सा, खरे रङ्ग का तिरंगा झण्डा लिये था, जिसमें डंडा भी न था।

वल्लभ दोनों दलों के बीच में जा कूदा। बोला—'क्यों लड़े मरते हो? अपने-अपने घरों को लौट जाओ। पड़ोसियों की तरह रहो।'

भीड़ एक बार हटकर फिर सिमट पड़ी। वल्लभ ने फिर निषेध किया। अब की बार दोनों दल दुगने वेग के साथ उमड़ पड़े। परन्तु वल्लभ फिर बीच में आ पड़ा। टक्कर न होने पाई। मुसलमानों के दल के पीछे से

हिन्दुओं पर रोड़े फेके गये। बारूद में चिनगारी-सी पड़ गई। वल्लभ ने कन्धे से ऊपर उठाये हुये हाथ की उँगलियों से झण्डे को लहराया और चिल्लाकर कहा 'इसके सम्वाद को सुनो। इसके चक्र को चीन्हो।'

न किसी ने सुना, न किसी ने चीन्हा। छुरियां चल पड़ीं। बरकाव में वल्लभ के झण्डे पर भी वार हुये और वह कई जगह से कट-फट गया। वल्लभ के रक्त से वह फटा हुआ झंडा कई जगह भीग गया। फिर एक हिन्दू घर में भीड़ ने आग लगाई। वल्लभ आग बुझाने के लिये दौड़ा। उस रक्त सिंचित झण्डे को सिर से लपेट कर वह आग बुझाने पर जुट गया। वह आग की लपटों से लड़ रहा था। उसके ऊपर रोड़े फेके जा रहे थे। झण्डे का एक छोर आग की लहरों के साथ फरफरा जाता था। किसी ने वल्लभ के कलेजे पर बल्लम की हूल दी। वल्लभ लपटों में तो नहीं गिरा, परन्तु सड़क पर गिरकर धराशायी हो गया। झण्डे की गांठ खुल गई। वह सड़क की धूल में धूसरित हो गया।

पुलिस आ गई। भीड़ भाग गई और अपने-अपने हताहतों को छोड़ गई। पुलिस ने उस जलते हुये मकान की बगल में सड़क की धूल पर वल्लभ का शव पाया और पास ही पड़ा हुआ कटा-फटा वह झण्डा।

पुलिस ने उस झण्डे को उठा लिया।

अनुसन्धान में उस कटे-फटे झण्डे का रहस्य खुला।

अब वह एक छोटे से घर पर लहराता रहता है। न तो कभी उसका वह रक्त धुलेगा, न कभी वह भदरंगा होगा, चाहे प्रलय का सा ही पानी उस पर बरस जाय।

वल्लभ के मित्र प्रमोद का यही विश्वास है।

तिरंगे वाली राखी

दामोदर सेक्रेटेरियट में था जिसका अब हिन्दी नाम सचिवालय हो गया है। ग्रेजुएट था। नौकरी करते करते समय भी कई वर्ष का हो गया था, परन्तु वेतन सौ से आगे न बढ़ पाया।

सचिवों और मन्त्रियों के वेतन का अनुपात जब वह अपने वेतन से लगाता था तब खिसिया खिसिया भी जाता था। हम दिन भर क़लम रगड़ें और ये केवल छोटी सी क़ैफ़ियत। हम दिन भर टाइप ठोकें और ये केवल हस्ताक्षर !! यह बहुत अखरता था।

दामोदर ने संकल्प किया, 'क्या गरज पड़ी जो चोटी का पसीना एड़ी तक बहाऊं ? ज़ाब्ते का पेटा भर दिया करूँगा, बस। मन लगाकर काम करूँ तो भी मीन मेख ! दस बजे से चार बजे तक का ही नौकर हूँ न ? इन्हीं छः घण्ठों के तो सौ रुपये हैं ? इन छः घण्टों में हाथ पैर फैलाने, जमुहाइयां-अंगड़ाइयां लेने और पान, तमाखू सिगरिट और थोड़ी सी गप-शप के लिये भी तो समय चाहिये। सचिव और मन्त्री, बड़े बाबू और बाबू, यहाँ तक कि चपरासी तक यही सब करते हैं, फिर मैं ही क्यों अकेला ? मझोले बुद्धू बना रहूं ?'

उसने अपने एक साथी से भी कहा।

साथी कुनमुनाया,—'देश में कुछ असाधारण परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं, काम बढ़ गया है, करना ही पड़ेगा—'

'हम तुम तो देश में हैं ही नहीं ! इन परिस्थितियों में अपने वेतन को बढ़ाने की बात सब भूल गये !! हम बैठ जायँ तो काम कौन करेगा ?' उसने कहा।

'हां जी, सो तो है ही। यह प्रसङ्ग सब परिस्थितियों के बाहर की बात समझी जाती है। हम लोगों को कुछ तो विराम मिलना चाहिये।' साथी ने सकारा।

१५ अगस्त आया। झण्डे फहराये गये। जुलूस निकले। जनता ने खुशियां मनाईं। दामोदर और उसके साथी इस हर्ष के सहभागी बने। सचिवालय के खुलने पर उस हर्ष की खुमारी बनी रही। जमुहाइयां और अंगड़ाइयों का क्रम काम के सापेक्ष में बढ़ चढ़ कर रहा।

(२)

उसके बाद ही सावन की पूर्णिमा आ रही थी। छुट्टी का दिन, परन्तु घर पर अंगड़ाइयों की गुञ्जाइश कहां ? इस छुट्टी के पहले अङ्गरेज़ी के एक दैनिक में दामोदर ने किसी भारत-विद्वेषी यात्री का मन्तव्य पढ़ा। उसने भारत के लिये लिखा था,—'It is a land of holidays and hooliganism'—यह देश छुट्टियों और छुट्टरों की भूमि है ! दामोदर और उसके साथियों को बहुत खटका यह मन्तव्य। जमुहाइयां कम हो गईं, क्षोभ बढ़ गया। परिणाम एक ही—काम कम।

दामोदर की एक बहिन थी। वह दूर थी। डाकिये ने दामोदर को उसी समय एक लिफाफा दिया। अक्षर पहिचान लिये। बहिन की चिट्ठी थी। लिफाफा खोला। उसमें एक छोटी सी सुन्दर राखी भी थी, परन्तु ज़रा विलक्षण थी। राखी का छोर छोटा सा तिरंगा झण्डा था, उसके बीच में चक्र।

दामोदर ने चिट्ठी पढ़कर जेब में रख ली। काम करने लगा। मन उचट उचट कर राखी के विलक्षण आकार-प्रकार पर जा रहा था। इसके बदले में बहिन के पास क्या भेजूं ? बार बार प्रश्न उठता था। उसको

वह राखी इतनी सुहावनी लग रही थी कि समझ में नहीं आता था कि बदले में क्या भेजूं ? बहिन सम्पत्तिवान घर में थी। वह बहुत सीमित आय वाला। जो कुछ भी थोड़े से रुपये भेज सकता था वे उस सुन्दर राखी का प्रतिफल कैसे हो सकते थे ? तब उस तिरंगे वाली राखी के उपलक्ष में क्या दूं ? तिरंगे के प्रतीक-वाद पर उसने बहुत सुना और पढ़ा था। बहिन ने भी अवश्य पढ़ा होगा। तब तो इस सावन पर उसने राखी को इस विलक्षणता से सजाया। वह इसके प्रतिफल में क्या चाहती होगी? किस बात की अपेक्षा करती होगी ? देश में अनेक कठार परिस्थितियां उठ खड़ी हुई हैं, इनमें से किस परिस्थिति के मुकाबले में डट जाऊं ? बहिन से कह तो सकूं, उसको मालूम तो होजाय, कि तुम्हारी राखी के भीतर जो सदेशा बैठा हुआ था, तुम्हारे राखी वाले तिरंगे ने जो कुछ मांग की, उसको मैं निभाने जा रहा हूँ। परन्तु उसने चिट्ठी में किसी भी मांग को नहीं लिखा था—लिखती भी कैसे ? क्या लिखती ? दामोदर इन प्रश्नों में डूबता उतराता रहा। सचिवालय के बन्द होने पर घर गया। India is a land of holidays and hooliganism भारत छुट्टियों और छुट्टरों की भूमि है—यह वाक्य उसको सता रहा था। उस वाक्य के त्रास से राखी का वह सौन्दर्य टकरा टकरा जाता था।

रात को वह देर में सो पाया। सवेरे पूर्णिमा थी। पूर्णिमा को उसने चाव के साथ बहिन की भेजी हुई वह राखी अपनी कलाई पर बांधी। राखी के तिरंगे का रंग चमकदार था। उसको अपनी कलाई पर ऐसा ही लगा।

(३)

राखी तो कलाई पर बांध ली। अब उसका प्रतिफल ? दामोदर के अन्तर्मन ने उसको एक सुझाव यकायक दिया। वह हर्षोन्मत्त हो गया। उसने अपनी बहिन को लिखा,—

'.... तुमने अब की बार विलक्षण राखी भेजी। इसका प्रतिफल क्या भेजूँ समझ में नहीं आरहा था। यकायक एक सूझ मन में दौड़ी।

उसके पीछे एक छोटा-सा इतिहास है। तुम्हारे सिवाय और किसी को लिखूँ भी कैसे ? काम में मेरा मन नहीं लग रहा था। सोचता था कि जितना वेतन मिलता है उसके भीतर ही काम की खानापूरी क्यों न करता रहूँ ? फिर न जाने कहाँ से यह सूझ मन में दौड़ पड़ी, तुम्हारी राखी को कलाई पर बाँधने के बाद,—मैं जी लगा कर अपना काम किया करूँगा, काम को वेतन के अनुपात से तौलूँगा ही नहीं। मैंने सोचा तुम्हारा तिरंगा मुझसे यही माँगता है, मैं अपना उत्कृष्ट ही नहीं, अपना उत्कृष्टतम अपने कर्तव्य को दूँगा ! हमारा देश हम सबसे तिरंगे की मार्फत यही मांग रहा है। तुमको यह वचन देता हूं, इसी के अनुसार बराबर कर्तव्य पालन करूंगा। तुमने जब तिरंगे वाली राखी भेजी तब तुम अपने भाई से ऐसा ही कुछ मांग रही होगी न ? चपरासी, मजदूर, किसान, वकील, डाक्टर, सैनिक, पुलिसमैन, छोटे और बड़े बाबू, मिलों के मालिक इत्यादि यदि दृढ़तापूर्वक ठान लें कि वे अपना अपना उत्कृष्ट ही नहीं वरन् अपना उत्कृष्टतम अपने कर्तव्य की सेवा में अर्पण करते रहेंगे तो कोई विदेशी यह न कह सकेगा कि भारत छुट्टियों और छुट्टरों या आवारों का देश है ! और हाँ, मन्त्री, सचिव, सम्पादक, कवि, लेखक, उपन्यासकार और नाटककार, और कलाकार इत्यादि भी अपना उत्कृष्टतम अपने देश और समाज को दें, फिर किसकी मजाल जो अपनी कल्पना तक में तिरंगे का अपमान कर सके और देश की स्वाधीनता पर उँगली भी उठा सके ? अरे ! मैं तो कुछ व्याख्यान सा दे उठा !! परन्तु लिखा यह सब तुम्हीं को है। जरूरत पड़ने पर अपने साथियों से भी कहूंगा, पर और कहीं कुछ भी नहीं। मेरी यह वांछा नहीं है कि मैं संसार भर में इस बात को कहता फिरूँ। कोई करे या न करे मैं तो निश्चय ही ऐसा करूंगा—अपना उत्कृष्ट ही नहीं अपना उत्कृष्टतम अपने काम को दूँगा। लिखना अवश्य, तुम अपनी राखी के बदले में कुछ ऐसा ही चाहती थी न ?…"

हमीदा

संध्या का समय था, ठण्ड का दिन। पटना से कुछ दूर एक गाव के पास से बहती हुई चौड़ी नदी में एक डोंगी चली जा रही थी। डोंगी में चार हिन्दू थे और एक मुसलमान लड़की। हिन्दुओं में तीन मल्लाह थे, एक पढ़ा लिखा आवारा। पेशावर में मुसलमानों ने हिन्दू स्त्रियों को अपमानित किया था और मारा था। पटना ज़िले के उस गांव के कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों से पेशावर का बदला चुकाया। यह लड़की उस गांव के भागे हुये मुसलमानों के समूह की थी। उन चार में से पढ़ा लिखा आवारा घूमतेघामते अकस्मात् इन मल्लाहों से आ मिला था। बिना किसी बड़े प्रयास के वह मुसलमान लड़की हाथ पड़ गई। बिनी किसी बड़े प्रयास के उसको चौड़ी नदी की मझधार में डुबो देने का निश्चय कर लिया गया।

लड़की का सुन्दर मुख कुम्हलाया हुआ था। प्यास के मारे उसका गला सूख गया था। उस कड़ी ठण्ड में भी वह डर के मारे पसीने में तर थी। परन्तु नदी में से एक अंजली पानी लेने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। वह जानती थी कि क्या होने वाला है।

लड़की ने गिड़गिड़ा कर कहा, 'मुझे मारिये नहीं, मुझ पर रहम कीजिये। मैंने किसी हिन्दू का कुछ नहीं बिगाड़ा है।'

एक मल्लाह ने डोंगी का डांडा खेतेखेते ठहाका मारा, 'पेशावर के उन हिन्दुओं ने वहाँ के वहशी मुसलमानों का क्या बिगाड़ा था, जो उन्होंने बेक़सूर हिन्दुओं का खून बहाया?''

बिलकुल सूखे स्वर में वह लड़की बोली, 'पर मैंने या मेरे परिवार वालों ने तो कुछ नहीं किया । मुझे बचा लीजिये, आप सबके हाथ जोड़ती हूँ।'

मल्लाहों ने परवा नहीं की। मझधार थोड़ी दूर थी। एक मल्लाह ने अपने पढ़े लिखे साथी से पूछा, 'माधव बाबू, कुछ और आगे चल कर या यहीं?'

लड़की ने टूटे हुये स्वर मे प्राणअर्चना की, 'मुझे मत मारिये, आप हिन्दू हैं। बिना अपराध चींटी को भी नहीं मारते, फिर मै तो मनुष्य हूँ।'

'मनुष्य! किस जाति की मनुष्य? राम, राम!' एक मल्लाह के मुँह से निकला।

माधव ध्यान के साथ नदी की नीली लहरों को देख रहा था। उसका ध्यान जैसे कहीं से उचटा। दृष्टि उस लड़की की आसुओं से भरी हुई बड़ी बड़ी आखों पर गई।

माधव ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है?'

लड़की ने तुरन्त उत्तर दिया, 'जी. हमीदा।'

माधव लड़की को एक क्षण चुपचाप देखता रहा। उस लड़की की उन आखों में कितनी याचना, लालसा और निस्सहायता थी।

माधव ने चौड़ी नदी की नीली धार को फिर एक क्षण के लिये देखा। एक मल्लाह ने पूछा, 'माधव बाबू, कुछ और आगे या यहीं ठप करें?'

माधव ने फिर उस लड़की की ओर देखा। वह थरथर काप रही थी। आँखों में आसुओं की धारा थी और हाथ जुड़े हुये। माधव ने गला साफ़ करके होठ सटाये। मल्लाहों से कहा, 'आगे चलो।'

थोड़ी दूर चलने के बाद मल्लाहों ने फिर वही प्रश्न किया। माधव ने फिर वही उत्तर दिया। डोंगी दूसरे किनारे के निकट पहुँचने को हुई, मल्लाहों ने डोंगी को ठहरा लिया।

'अब यहीं,' एक ने अनुरोध किया, 'पानी काफ़ी गहरा है।'

माधव ने मानो सुना नहीं। लड़की से कहा, 'हमीदा, तुम जवान हो, मैं भी जवान हूं। मेरे साथ ब्याह करोगी? मैं तुमको हिन्दू बना लूँगा।'

डूबते को जैसे तिनके का सहारा मिला। तुरन्त बोली, 'मैं बिलकुल तैयार हूँ। मुझे ज़िन्दगी बख्श दीजिये। मैं मरना नहीं चाहती, मैं हिन्दू हो जाऊँगी और आपके साथ ब्याह कर लूँगी।'

'ठीक, तुम्हें मारा नहीं जायगा। ले चलो, मल्लाहो, डोंगी को किनारे पर,' माधव ने कहा।

एक मल्लाह जलकर बोला, 'फिसल गये माधव बाबू, इस मिट्टी के खिलौने पर! हमारे पड़ोस के एक गाव के न मालूम कितने मल्लाहों को वहा के मुसलमानों ने मार डाला है। इसको मार दो। एक तो कम हो जायगा।'

माधव ने उत्तर दिया, 'इसके साथ विवाह कर लेने से एक मुसलमान कम हो जायगा और एक हिन्दू बढ़ जायगा—यह नहीं देखते हो?'

मल्लाहों ने असहमति प्रकट की, 'यह नागिन है, नागिन।'

माधव ने प्रतिकार किया, यह नागिन है, तो मैं नाग हूं।'

मल्लाह विवश हो गये। डोंगी किनारे पर लगा दी गई। माधव ने हमीदा को डोंगी में से उतार लिया। उसके सूखे चेहरे पर हर्ष की कुछ रेखायें बिखर रही थीं. जैसे मुरझाये हुये फूल पर ओस की बूँदें।

माधव हमीदा को लेकर एक दिशा में चला गया। एक मल्लाह ने अपने साथियों से कहा, 'रोयेगा किसी दिन सिर धुनधुन कर। पछताएगा यह छोकरा माधव।

दूसरा बोला, 'इसकी नियत में बल पहले ही आ गया था। बदमाश ने हम लोगों को व्यर्थ ही परेशान किया। ख़ैर।'

जितनी आतुरता के साथ कोई व्यक्ति एक धर्म से दूसरे में उलटा-पलटा जा सकता है, हमीदा उतनी ही अविलंबता के साथ हिन्दू बनाली गई। उसी दिन उसका विवाह भी हो गया। रोकटोक का साहस रखने वाला कोई भी माधव के परिवार में न था। बिहार की पुलिस के भय और चंचल अशांत अव्यवस्था ने धर्म परिवर्तन और विवाह का आयोजन एक ही दिन के भीतर कर दिया। हमीदा का नाम रखा गया शांति।

आज शांति या हमीदा की सुहागरात थी, जब माधव ने कमरे में प्रवेश किया। लैंप का काफी प्रकाश था उसने देखा लड़की के चेहरे पर लाज या संकोच का कोई चिन्ह नहीं है। हर्ष नाममात्र को नहीं है—जैसे बलिदान के पहले कोई पशु सुन्न सा रह जाता है। लड़की माधव की ओर ज़रा तिरछी गरदन किये टकटकी लगा कर देखती रही। हाथ जोड़े हुये धीरे से बोली, 'आइये'

'हमीदा !'

'जी, नहीं, शांति'

'नहीं, हमीदा तुम सुखी हो, हमीदा ?'

'आपने मेरे प्राण बचाये, आपके साथ मेरा विवाह हो गया है, आप मेरे पति हैं, आपके साथ जीवन बिताना है, सुखी क्यों नहीं हूँ ?"

माधव कमरे में टहलने लगा, हमीदा नीचा सिर किये खड़ी रही।

"तुम सुखी नहीं हो" यकायक टहलना बन्द कर के माधव ने कहा।

हमीदा के सूखे होंठों पर अत्यंत क्षीण मुस्कराहट आई। बोली, 'आपको कैसे मालूम ?'

माधव बोला, 'तुम सौंदर्य की मूर्ति हो, हमीदा, परन्तु केवल मूर्ति।' वह फिर टहलने लगा।

हमीदा ने कहा, 'आपको और चाहिये ही क्या ? पति और चाहता भी क्या है ?'

बिना उसकी ओर मुँह किये टहलते हुये ही माधव ने उत्तर दिया, मूर्ति नहीं, मनुष्य चाहिये'

'हूं तो—मानव ही तो हूं'

'कैसी ?'

''अभागिन, अपने मां बाप से बिछुड़ी हुई ।'

'हिन्दू धर्म कैसा लगा ?'

'कैसा लगा ! अभी तो उतना ही देख पाया है जितना उस दिन आपके रक्षक-हाथ में दिखलाई पड़ा था ।'

''और भी देखोगी ! गुन्डों और आवारों में भी वह कभी कभी दिखलाई पड़ सकता है ।'

माधव सजेसजाये पलंग पर बैठ गया । हमीदा खड़ी थी । माधव ने कहा, 'बैठ जाओ, हमीदा ।

वह बोली, 'आप भूलते हैं—शांति कहिये ।'

'नहीं, हमीदा. बैठो, हमीदा ।'

'कहां ? उसने भाव हीन स्वर में पूछा ।'

'जहाँ तुम्हारा मन चाहे,' फिर माधव ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'तुम बिलकुल स्वतंत्र हो । जो इच्छा हो, वह करो, जहाँ जाना चाहो, जाओ । मैं पत्थर के साथ विवाह की रीति नहीं मनाऊंगा ।'

हमीदा के पैर लड़खड़ा गये । वह नीचे बैठ गई और बाहों में मुँह छिपा कर बिलखबिलख कर रोने लगी । माधव उठ खड़ा हुआ । उछल कर उसके पास गया । सिर पर हाथ फेर कर बोला, 'हमीदा, बुरा मान गई क्या ? मैंने उस दिन तुम्हें नदी की धार में नहीं ढकेला—उसे रक्षा करना कहती हो । आज मैं तुमको जीवन के प्रवाह में नहीं ढकेलूंगा । मेरा मतलब केवल इतना ही है । मैंने तुम्हारा अपमान करने के लिये कुछ नहीं कहा ।'

अपने को नियंत्रित करके हमीदा ने कहा, 'आपने मेरे साथ इतनी बड़ी नेकी की है कि अहसान कभी चुकाया नहीं जा सकता। मैं आपके साथ अपना जीवन बिताने को तैयार हूं।'

माधव पलंग पर फिर जा बैठा, बोला, 'तुम यदि अपने माता पिता के परिवार में फिर जा मिलो, तो भी यह बात कह सकोगी ?'

'क्या में सच बोलूं ?' हमीदा ने सिर नीचा किये हुये पूछा।

'अवश्य,' माधव ने उत्तर दिया,

हमीदा बोली, 'नहीं कह सकती, शायद उस बात को वहाँ नहीं दोहरा सकूंगी।'

'हमीदा,' माधव ने कहा, 'मैं सचमुच बहुत प्रसन्न हूँ, विवाह और बलात्कार दो बिलकुल अलग अलग चीज़ें हैं। क्या तुम मुझे एक वचन दे सकोगी ?'

'क्या ?'

'तुम भूल जाओ उस स्वांग को जो ब्याह के नाम से आज हुआ है।'

'कैसे ?'

'मेरे और तुम्हारे सिवा और कोई इसको नहीं जानने पायगा, अन्यथा शायद कुछ दिक्कत में पड़ जाओ, दिन में हम लोग संसार के सामने पति पत्नी और रात में एक दूसरे से बिलकुल अपरिचित।'

'हो सकता है, माधव बाबू, पर मैं अपने कुटुंब को कैसे पाऊंगी ? कब पाऊंगी ?'

'मैं कोशिश करूंगा।'

'आप किसी आफ़त में तो नहीं पड़ जाएंगे ?'

'बिलकुल नहीं, सचाई पर चलने वाले के पास आफ़त आती कहां है ?'

वे दोनों कुछ क्षण चुप रहे, हमीदा ने सिर उठाया, माधव ने देखा उसके होठों पर मृदुल मुस्कराहट थी और आंखों में ओज।

हमीदा ने कहा, 'हिन्दू, मुसलमान—दोनों में यह रिवाज है कि जिसको कोई बहन मानले, तो यह पवित्र कल्पना दोनों की रक्षा करने में बड़ी सहायता करती है।'

माधव ने हँस कर कहा, 'मुझ सरीखे आवारा गुन्डों के लिये इस कल्पना का थोड़ा सा ही मूल्य है, मैं पूछता हूँ हमीदा, क्या बिना इस प्रकार के विचार या आड़ओट के स्त्री पुरुष एक दूसरे का मान या पवित्रता नहीं बनाये रख सकते ?'

हमीदा उछलकर खड़ी हो गई, उसका चेहरा उमंग से खिल गया था। आंखें भर गईं। बोली, 'माधव बाबू, आप अपने को गुन्डा आवारा कहते हैं! गुन्डे पेशावर में हैं और न जाने कहां। यहां आप सरीखे यदि और बहुत से होते, तो यह देश ऊँचा न उठ जाता!'

'ऊँचा उठ जाता! मुझ सरीखे लोगों के बोझ से ही तो यह देश इतना दबा हुआ है,' उसने कहा, 'अच्छा, अब तुम सो जाओ, हमीदा। कल से तुम्हारे परिवार की खोज करूंगा।'

माधव तुरन्त उस कमरे से बाहर चला गया, हमीदा चुपचाप देखती रही।

भगाई हुई स्त्रियों की तलाश करते-करते पुलिस को हमीदा का भी पता लग गया। इस अनुसंधान में माधव ने भी कुछ सहायता की थी।

माधव ने आ कर हमीदा से कहा, 'तुम्हारे परिवार का पता लग गया है। पुलिस आई है, साथ में तुम्हारा भाई है।'

हमीदा बोली, 'सोचती हूँ मैं न जाऊँ।'

'क्यों ?'

'क्योंकि घर में मुझे सन्देह की निगाहों से देखा जायगा। मेरी पवित्रता में विश्वास नहीं किया जायगा। मेरा जीवन दुख भरा बीतेगा।'

'बिलकुल नहीं, मैं सौगन्ध खाऊँगा, गंगाजली उठाऊँगा। तुम्हारी पवित्रता पर उन लोगों को विश्वास करना पड़ेगा।

"पर मैं जाना नहीं चाहती, लोग क़सर्मों का विश्वास बहुत कम करते हैं।'

'अवश्य करेंगे, चलो मेरे साथ।'

'आप उन लोगों से कह सकेंगे कि आपने मुझे अपनी सगी बहन की तरह रखा है?'

'कोई ज़रूरत नहीं ऐसा कहने की।'

'अच्छी बात है, चलिये परन्तु यदि उन लोगों ने मेरा अपमान किया या मुझे अस्वीकार किया, तो लौट आऊँगी।'

'यदि सम्मान के साथ स्वीकार कर लिया, तो कभी कभी एक शब्द अपनी कुशल का लिख भेजा करोगी?'

हमीदा का गला भर आया, 'क्या कभी भूल सकूंगी?' उसने कहा

माधव हमीदा को उसके परिवार के हवाले कर आया। बिदा के समय हमीदा ने माधव को प्रणाम किया। उसकी आंखों में उसने जो कुछ उस समय देखा, शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाया। सोचा, आज सचमुच मैंने शांति को पा लिया।

अण्णाजी पन्त

अन्धेरी कोठरी, सींड़, मच्छर, खटमल और अन्य कीड़े मकोड़े। खाने पीने के लिये मिट्टी का एक पात्र। रोशनी के लिये बहुत मोटी दीवार में ऊँचाई पर एक छोटा सा छेद। उसी के द्वारा मालूम होता था कि दिन कब आया और रात कब। अधजली रोटियाँ या अधपके मोटे चावल, वह भी दिन-रात में केवल एकबार, परन्तु पेटभर नहीं। आजन्म क़ैद। जिसका सीधा अर्थ था कुछ ही दिनों बाद भूखों मरे हुये कंकाल को छोड़जाना और क़िले की खाई में फेंके जाने के उपरान्त उस अस्थिपंजर का गीधों द्वारा बिखेर दिया जाना।

जब औरंगजेब ने सन् १६६८ की जनवरी में जिन्जी के क़िले को ले लिया तो मराठी सेना के बचे हुये सैनिकों को आजन्म क़ैद दे दी। उस भयानक बीभत्स मौत से बचने का एक उपाय था,— एक ही, अपना धर्म छोड़कर इस्लाम का कबूल करना। युद्ध में मारे जाने से बहुत सैनिक नहीं बचे। जो बचे थे उनमें से एक अण्णाजी पन्त था। उन लोगों ने 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' ही अच्छा समझा और वे मुसलमान नहीं हुये।

अण्णाजी पन्त दीवार के उस छेद में होकर आने वाले प्रकाश से और चौबीस घण्टे में एक बार आधा-पर्दा भोजन लाने वाले प्रहरी के आने से दिन का मान कर लेता था।

उसके कपड़ों को मैला कहना गन्दगी का अपमान करना था। क्या वह जिन्जी के क़िले की कठोर पथरीली दीवार से सिर को टकरा कर पल

पल पर तिल–तिल करके आने वाली मौत की क्रिया को तुरन्त समाप्त नहीं कर सकता था ? उस सिपाही को प्राणों का मोह न था—अपने प्राणों का। फिर किसका मोह था ?

छत्रपति शिवाजी स्वर्गवासी हो चुके थे। संभाजी का वध किया जा चुका था। राजाराम-शिवाजी के दूसरे पुत्र—बीमार थे। मराठी सेनायें तितर–बितर थीं। स्वार्थी और देशद्रोही भी यहाँ–वहाँ अपने नारकीय प्रयत्नों में रत थे। किन्तु स्वराज्य की धारा फिर भी अखण्ड थी।

प्रल्हाद नीरजी का उदाहरण और छत्रपति शिवाजी का चमत्कार अण्णाजी पन्त के सामने था।

प्रल्हाद नीरजी ! निःस्वार्थता, निर्लोभता और त्याग की मूर्ति, स्वराज्य कामना की सजीवता ! तिल–तिल करके भले ही मर जाऊँ, परन्तु दीवार के पत्थर से सिर टकरा कर आत्मघात नहीं करूँगा। अण्णाजी पन्त ने निश्चय कर लिया था।

और, कुछ करके ही मरूँगा। स्वराज्य की वेदी पर क्या बिना कुछ चढ़ाये ही मर जाऊँगा ? उस अन्धेरी कोठरी में छिपा चोरी आने वाले धुँधले प्रकाश में बढ़े हुये केशों और गुथी हुई दाढ़ी पर आँख की चमक कौंध–कौंध जाती थी। अपने निश्चय की उस कौंध को अण्णाजी पन्त भी नहीं देख सकता था।

(२)

जो प्रहरी खाना–पानी लाता था वह हिन्दू था। अण्णाजी ने उससे पूछा, 'तुम्हारे कितने लड़के हैं ?'

उत्तर मिला, 'एक भी नहीं। भगवान् ने शायद भाग्य में लिखा ही नहीं है।'

'तुमने कैसे जाना ? अपना भाग्य स्वयं तो कोई पढ़ नहीं पाता।'

'आप ब्राह्मण हैं, परन्तु सिपाही हैं—आप भी मेरा भाग्य नहीं पढ़ सकेंगे।'

'सिपाही होने से क्या मैं ब्राह्मण नहीं रहा ? ज्योतिषी घराने का हूँ और वह घराना भी कर्मकांडियों का ।'

'हैं ! ऐसा है ?'

'बिलकुल । तुम्हारे माथे और हाथ की रेखाओं को देख कर बतला दूँगा । यदि किसी देवता के ध्यान की आवश्यकता हुई तो रात को ध्यान भी करूँगा । मरना तो जल्दी से है ही, तुम्हारा कुछ उपकार ही करके मरूँ ।'

'कैसे दिखलाऊँ रेखाओं को ?'

'जरा कोठरी के बाहर होकर ।'

प्रहरी ने कोठरी के बाहर जाकर इधर-उधर देखा । आतुरता के साथ लौटकर आया ।

बोला—'मुसलमान पहरेदार पेड़ की छाया में बैठा है ।'

अण्णाजी ने पूछा, 'क्या कर रहा है ?'

'मदक पी रहा है ।'

'इसी प्रकार नित्य करता है ?'

'कभी-कभी नहीं भी करता है ।'

'मुँह किस ओर है उसका ?'

'इस ओर पीठ किये है ।'

'तब तो मैं किवाड़ों से जरा बाहर होकर तुम्हारी रेखाओं की परीक्षा कर लूँगा ।'

'यदि उसने देख लिया तो मैं मार डाला जाऊँगा ।'

'नहीं देख पावेगा, चलो ।'

प्रहरी के साथ अण्णाजी किवाड़ों से ज़रा बाहर आ गया । सुन्दर धूप, मनोहर प्रकाश, चिड़ियों की मधुर चहचहाहट । मानो सबके सब मिलकर अण्णा जी से कह रहे हों कि स्वराज्य के लिये कुछ कर डाल; जीवन के लिये कुछ करने को उछल पड़ ।

अण्णाजी ने रेखाओं का निरीक्षण किया और प्रहरी के साथ भीतर चला आया।

अण्णा जी ने दबे हुये स्वर में कहा, पुत्र की उत्पत्ति होगी तो, परन्तु ग्रहों की कुछ बाधायें हैं।'

'कैसे होंगी ये बाधायें शान्त?' अकुलाकर प्रहरी ने प्रश्न किया।

अण्णा जी ने सान्त्वना दी, 'मैं ही उन ग्रह-बाधाओं को शान्त कर सकूंगा; रात भर परिश्रम करूंगा, परन्तु पूजन की सामग्री तुमको जुटानी पड़ेगी।'

'क्या-क्या?'

'यों ही कुछ साधारण सा सामान। एक कटार, दो बड़ी कीलें, एक हथौड़ी, सिन्दूर, कुछ फूल और थोड़ा सा गुड़।'

'बस।'

'कटार और कील। कोई देख लेगा तो मेरा सिर धड़ पर नहीं रहेगा।'

'जब भाग्य में पुत्र लिखा है तब सिर धड़ पर ही रहेगा और दुर्गा की पूजा के लिये यह सब सामान अत्यन्त आवश्यक है। हथौड़ी की सहायता से ग्रहों के सिर पर कीलों को ठोक दूँगा, फिर पुत्र प्राप्ति में कोई बाधा नहीं रहेगी। अपने कपड़ों में छिपाकर ले आना कल। काम हो जाने पर परसों फिर ले जाना।'

कुछ असमञ्जस के उपरान्त प्रहरी ने स्वीकार कर लिया।

(३)

दूसरे दिन मांगी हुई सामग्री आ गई। अण्णाजी की आँखों में प्रहरी ने एक विलक्षण चमक को देखा। उसको विश्वास हो गया यह भवानी का पण्डा अवश्य है। प्रहरी चला गया।

अण्णाजी रात की बाट जोहने लगा, क्योंकि दुर्गा की पूजा रात में ही होनी थी। जिस रात के आगमन की शंका से अण्णाजी का कलेजा

घस-घस जाया करता था,—खटमल, मच्छर, कीड़े-मकोड़े और सीड़ इत्यादि की दुर्गन्ध,—उसको मल-मूत्र भी उसी कोठरी के एक कोने में त्यागना पड़ता था,—उसी रात के आगमन की प्रतीक्षा में अण्णाजी उस दिन अत्यन्त उत्कंठित रहा।

सुन्दर धूप, मनोहर प्रकाश और चिड़ियों की चहचहाहट के सामञ्जस्य के स्वप्न पर स्वप्न आने लगे। किसी प्रकार दिन कटा, रात आई। अण्णाजी ने किवाड़ों से अपने कान टिका दिये। प्रहरी के चलने-फिरने की आवाज़ बराबर आ रही थी।

परन्तु मुग़ल पहरेदार को आधी रात के समय कुछ आराम भी तो चाहिये था।

सिपाहियों की चहल-पहल नींद के पहरे में समा गई। और अण्णाजी ने भवानी साधना का आरम्भ कर दिया।

धीरे-धीरे। बार-बार कान टिका-टिका कर। आहटों को लेते हुये। हथौड़ी और कीलों ने दो घंटे में किवाड़ों के कुन्दों और मुड़ी हुई कीलों को साफ कर दिया। उसने धीरे से किवाड़ खोले। फिर आहट ली। सन्नाटा छाया हुआ था।

अण्णाजी जिन्जी के क़िले को राई-रत्ती जानता था। सवेरे के पहले ही वह कीलों, हथौड़ी और कटार की सहायता से क़िले के बाहर हो गया। और फिर जङ्गल में।

जङ्गल से वह अपने मावलियों के पास पहुँचा, जिनके दस्तों के सहयोग से वह मुग़ल सेना के विरुद्ध अनेक बार लड़ा था। उन जङ्गलों के एक मावली दस्ते का मुखिया मूलजी नायक था। मूलजी नायक ने कठिनाई से अण्णाजी को पहिचान पाया।

भरपेट भोजन और मन भर विश्राम के उपरान्त मूलजी ने अनुरोध किया, 'पन्तजी, गाना सुनाओ और एकाध कहानी भी, फिर आगे की कोई बात सोचेंगे।'

अण्णाजी ने स्वीकार किया।

अण्णाजी का स्वर बड़ा मीठा था और गाने का ढङ्ग बहुत ही मोहक। गाने के बाद उसने एक कहानी भी सुनाई—वह इस फ़न का भी पारङ्गत था।

यह सब हो चुकने पर उन लोगों ने एक योजना बनाई।

योजना ऐसी थी जिसके सफल होने के लिये लम्बा समय, बड़ा धैर्य और अनवरत अध्यवसाय आवश्यक था। परन्तु उन लोगों को उस क्लिष्ट योजना के सिवाय और कोई योजना सहज न जान पड़ी।

(४)

बरसें बीत गईं। सन् १७०५ आ गई। औरङ्गज़ेब को मरने के लिये अभी दो साल बाक़ी थे। उसके लड़के बाप की इतनी लम्बी उमर को देखते-देखते बुड्ढे हो गये थे।

अण्णाजी ने जिन्जी से निकल पड़ने के बाद अपनी दाढ़ी और केश और भी लम्बे कर लिये थे। परन्तु कपड़े साधू फ़क़ीरों के थे। सब सजधज उसी के अनुरूप। चिमटा, कम्बल, तूम्बा इत्यादि।

उसका अधिकांश समय मुग़ल छावनियों में जाता था। लहरा लहरा कर मीठे स्वर में गाता था और ठाठ ठुमक के साथ बढ़िया बढ़िया, नित्य नई, कहानियां सुनाया करता था। सिपाही उस पर रीझते थे और उसको खाना तथा पैसा बेभाव मिलता था। परन्तु वह जोड़ता अपने पास कुछ न था। दूसरे फ़क़ीरों या भिखारियों को दे डालता था। दूसरे दिन गायन और कहानी फिर उसकी सहायता के लिये प्रस्तुत।

सन् १७०० में सतारा का पतन हो चुका था और एक महीने पहले राजाराम का देहान्त।

सतारा के क़िले में काफ़ी मुग़ल सेना जा टिकी थी। इस सेना की अदला बदली होती रहती थी।

सन् १७०५ में सतारा के क़िले वाली सेना किसी और स्थान को भेज दी गई; और वह सेना सतारा पहुँची जो अरणाजी के गाने और कहानी पर रीझ चुकी थी।

फ़ौजदार को इस गाने वाले और कहानी के कथक्कड़ साधू का सतारा के क़िले में प्रवास अच्छा नहीं लगा। रोक टोक की। परन्तु उसे सिपाहियों के प्रबल अनुरोध के सामने अपने हठ का त्याग करना पड़ा।

अरणाजी सतारा के क़िले के भीतर स्थायी रूप से रहने लगा। बाहर जाने-आने के लिये उस पर कोई निषेध-बन्धेज न था। फ़क़ीर जो ठहरा। बहता पानी, रमता जोगी इनका कोई कुछ करे भी तो क्या करे?

(५)

'आज रात,' अरणाजी ने मूलजी नायक से कहा, 'बस आज की रात। भवानी की साधना और फिर सतारा हमारा और फिर हमारा।'

'ऐसा ही होगा' मूलजी ने दृढ़ता के साथ आश्वासन दिया।

'पन्त प्रधान को भी सूचना दे दी है। वे सहायता के लिए तैयार रहेंगे।'

पन्त प्रधान पन्त प्रतिनिधि भी कहलाता था। नाम था परशुराम त्रिम्बक।

'कितने आदमी चाहने पड़ेंगे?' मूलजी ने पूछा।

'जितने थोड़े हों उतना ही अच्छा—' अरणाजी ने उत्तर दिया,

'पर हों एक मन और एक प्रण के।'

मूलजी ने कहा, 'एक मन और एक प्रण के तो होंगे ही, परन्तु थोड़े से ही क्यों?'

'चील क्या झुण्ड बांध कर झपट्टा मारती है?'

मूलजी अरणाजी को जानता था। वह मूलजी के दस्ते का बहुत दिनों 'कारकुन' रहा था। पर निरा कारकुन या मुन्शी नहीं था, सिपाही था और उल्टी-सीधी सब तरह की कौड़ियों का खिलाड़ी।

उसने मूलजी को विस्तार के साथ अपनी योजना समझा दी और उसकी स्मृति पर सतारा के क़िले का अंगुल अंगुल नक्शा बिठला दिया।

उस रात सतारा के क़िले में अरणाजी के गायन की विशाल योजना थी। फ़क़ीर मस्ती पर था और उसने घुंघरू बांधकर नाचने का भी वचन दिया था। इतनी बड़ी दाढ़ी मूँछ वाला घुँघरू बाँधकर नाचेगा। एक विकट कुतूहल था। लगभग बीभत्स; सिपाही अरणाजी के उस रङ्ग-ढङ्ग की कल्पना कर करके हँस-हँस जाते थे।

एक बड़े भवन में नृत्यगान का आयोजन किया गया। सैनिक लगभग पाँच सहस्र। ठुस-ठुसा कर आ बैठे। मदक, हुक्का और शराब सब कुछ वहाँ था। परन्तु सेना के छोटे बड़े अफ़सरों को प्राप्त। सिपाही अपना अमल अकेले में कर आये थे।

मशालें दिखलाने के लिये सौ के लगभग तो नाई ही बुलाये गये थे। कोई नहीं जानता था कि इतने नाई आ कहाँ से गये। अरणाजी पन्त ने उनका प्रबन्ध किया था। ज्यादा जानने की अटक भी क्या थी?

तम्बूरे और पखावज पर अरणाजी का सुन्दर और मधुर गाना होता रहा। परन्तु सैनिक नृत्य के बीभत्स कुतूहल की प्रतीक्षा में व्याकुल थे। कुछ समय उपरान्त नृत्य की बारी आई।

अरणाजी ने विनीत और रसीले स्वर में कहा, 'मैं नाच के कपड़े पहिनकर अभी आता हूं।'

सभी खिलखिलाकर हँस पड़े। यह दाढ़ी मूँछ वाला लहँगा पहिन कर आवेगा!!!

अरणाजी बाहर चला गया। उसके जाते ही नाइयों की मशालें और भी दीप्त हुईं। मशालों के प्रदीप्त होते ही सौ मावली नङ्गी तलवारें लिये हुये यकायक घुस पड़े। नाइयों की मशालों ने उनकी तलवारों का साथ दिया। मुग़ल सिपाहियों में से बहुतेरों के पास कटारें और छुरियां थीं। वे लड़े। परन्तु मशालों और तलवारों का सामना न कर सके।

नाई अपने असली रूप में प्रकट हो गये—ये सब मावली थे।

मुग़ल सैनिकों में से कोई भी नहीं बचा। कुछ मावली भी मारे गये।

परन्तु सतारा हाथ आ गया। परशुराम त्रिम्बक को उसी समय समाचार भेज दिया गया। शीघ्र ही ताराबाई की सेना आ गई और सतारा पर दृढ़ अधिकार हो गया।

औरङ्गज़ेब की हिंसा और बुढ़ापे को एक बड़ा धक्का और लगा।

जब परशुराम त्रिम्बक के सामने सतारा विजय के लिये पुरस्कार वितरण का प्रश्न आया तब अण्णाजी पन्त और मूलजी नायक के बीच एक झगड़ा खड़ा हो गया।

मूलजी कह रहा था, 'सतारा विजय का श्रेय अकेले अण्णाजी को है। मैं तो साधनमात्र था।'

अण्णाजी सहमत नहीं हो रहा था। 'मैंने कुछ भी नहीं किया। इस विजय का सारा पुण्य मूलजी और उसके मावलियों को मिलना चाहिये।'

अन्त में औरङ्गज़ेब के इतिहास लेखक ख़फ़ीख़ाँ ने अपने इतिहास में इस झगड़े का इस प्रकार फ़ैसला कर दिया—

'उस क्रूर ब्राह्मण अण्णाजी पन्त ने क़िले के सारे सैनिकों का वध कर डाला था।'*

---

* History of the Marathas by Grant Duff vol. 1 p. 336 के आधार पर।

मालिश ! मालिश !!

लखनऊ स्टेशन के बाहर पत्थर के फ़र्श पर पड़े हुये तीसरे दर्जे के यात्रियों के बीच में छूटी हुई टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों में होकर सावधानी के साथ चलता हुआ वह चिल्ला रहा था;—'मालिश ! मालिश !!'

गर्मियों के दिन थे। लू तेज़ी के साथ चल चुकी थी। पर रात में ठंडक थी। यात्री पैर फैलाये जमुहाइयाँ अँगड़ाइयाँ लेते-लेते करवटें बदल रहे थे। एक हाथ में तेल की रंगबिरंगी शीशियाँ लिये हुये वह चिल्ला रहा था—'मालिश ! मालिश !!' उसके स्वर में कर्कशता न थी मिठास भी न था। जैसे धीरे-धीरे बहने वाला नाला छोटी सी चट्टान से टकरा टकरा जाता हो। ढले हुये स्वर मे कह रहा था वह, 'मालिश ! मालिश !!,

एक फटी-मोटी चादर पर मैली कुचैली तकिया का सिरहाना लगाये कोई करवट बदल रहा था। पजामा साफ़, सफेद कुर्ता, बाल अधभूरे, लम्बी-पतली पिंडलियों से सारे शरीर का अन्दाज़ा लगाया जा सकता था।

टेहुनी को जरा सी टेक कर उसने मालिश वाले से कहा, 'इधर साहब, इधर आइये।'

मालिश वाला मुड़ा। उसके पास गया। देखकर थोड़ा सा संकोच में पड़ा।

यात्री बोला, 'तशरीफ़ लाइये।'

मालिश वाले ने मैले-कुचैले कपड़ों पर अधफैली पतली टाँगों को देखकर जरा सी नाक सिकोड़ी। फिर उसके बिस्तर पर बैठ गया।

'आदाबर्ज' उसने कहा। यात्री ने उत्तर दिया, 'अस्सलाँमालेकुम' मालिश वाले ने अपनी जेब पर हाथ डालकर खींच लिया यात्री ने बीड़ी का बंडल और दियासलाई निकाल कर पेश कर दी।

बोला, 'हज़रत यह बीड़ी कुछ ऐसी मुँह लग गई है कि बढ़िया से बढ़िया सिगरेट पर से मन लौट पड़ता है।'

'शुक्रिया, आप शौक़ फरमायें' मालिश वाले ने कहा।

यात्री ने हठ किया। बंडल में से बीड़ी निकालकर जलाई, पर जब उसने देखा मालिशी ने कैंची मार सिगरेट की डिबिया ज़ेब से निकाली तब वह स्वयं बीड़ी पीने लगा। मालिशी ने डिबिया का मुहरा अपनी ओर किया। दियासलाई निकाली और सिगरेट की डिबिया को खोला। उसमें दो सिगरेट थे और बाकी बीड़ियां। सिगरेट निकालकर डिबिया बन्द कर दी और जेब में रख ली। सिगरिट जलाकर पीने लगा।

कश खींचते हुये बोला, 'यह कैंचीमार एक बार मुँह लगी कि जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ती।' पीते-पीते मालिशी को खांसी आ गई। यात्री के ऊपर भी उसका संक्रामक रोग की तरह असर पड़ा।

यात्री ने खांसते-खांसते पूछा, 'कितने पैसे होंगे मालिश के हज़रत !' मालिशी ने खांसते-खांसते जो उत्तर दिया, यात्री ने उसमें 'बारह' का शब्द सुना; शेष वाक्य मालिशी की खांसी में समा गया।

मालिश शुरू हो गई और उसके साथ-साथ बातें भी।

'दौलतख़ाना जनाब का कहां है ?' मालिशी ने बिना किसी कुतूहल के पूछा। यात्री ने उत्तर दिया, 'गरीबख़ाना यहीं करीब है।'

'और हजरत का दौलतख़ाना ?

'क़रीब के एक गांव में ग़रीबख़ाना है।'

मालिशी ने यात्री को आराम का सरूर दिया। वह कहता गया,— 'गवरमिंट से कुछ थोड़ा सा गुजारा लगा हुआ है। दिन कटते जाते हैं। वैसे दुनियां में जो कुछ हो रहा है उससे उम्मीदें अरमानों को जगा जगा

देती हैं। गवर्मिंट सारे जहांन को शोराज दे रही है, तो वाजिदअलीशाह मरहूम की औलाद को क्यों न उसके हक़ वापिस मिलें?

मालिश की गति तुरन्त खंडित हो गई। गदेली से गदेली रगड़कर मालिशी बोला, 'इन्शान अल्लाह! क्या बिहतरीन ख्याल है जनाब का!! हुजूर को सुनकर खुशी होगी कि बन्दा भी उसी खानदान का है थोड़ा सा गुज़ारा मिलता है। उससे यह बुरा वक़्त कटता रहता है, मगर जी बहलाने के लिये कुछ चाहिये इसलिये इस्टीशन पर चहल क़दमी के लिये आ जाता है।'

यात्री ने अपना उद्गार भेंट किया,—'हज़रत के गुलाम का भी बिलकुल यही हाल है। अब वक़्त आ गया है कि हम सब गुज़ारे और वजीफे वाले लोग जो लखनऊ के सच्चे और क़ुदरती हक़दार व वारिस हैं, कोशिश कर डालें। ज़रा सी मिहनत से काम बन सकता है। कांगरेस ने हल्ला-गुला करके अँग्रेज़ों की नाकों दम कर दिया और उन्होंने शोराज देना शुरू कर दिया। जिना साहब आला दिमाग़ बालिस्टर हैं; उन्होंने अपने दोस्तों के लिये पाकिस्तान का वादा झटक लिया है। हम लोग भी मैटिंग पर मैटिंग करें और सतियागिरा की जोरदार धमकियां दें तो अपने खानदान की नवाबी लखनऊ में फिर क़ायम हो सकती है। बस ज़रा क़ायदे और तरकीब से काम हो, कामयाबी हाथ लग जायगी।'

'बन्दा परवर, खुदा आपको सलामत रखें,' मालिशी ने कहा, 'दुनियां में कुछ भी गैर मुमकिन नहीं। कौन कह सकता था कि जिना साहब इतने बड़े बालिस्टर होते हुये भी बाजी मार ले जा सकेंगे। उन्होंने कांग्रेस को चित कर दिया और गवरमिंट को भी। सतियागिरा रत्ती भर भी नहीं किया जायगा! हम लोगों को भी नहीं करना पड़ेगा।'

यात्री ने संयुक्त प्रयत्न के लिये आग्रह किया—'अमीनाबाद में सब हक़दारों को इकट्ठा करके फौरन कोशिश शुरू कर दी जाय। यहीं मैटिंगें की जायें। इन्शा अल्लाह अच्छे दिन फिरेंगे और फिर फिरेंगे।'

मालिशी ने उत्साह के साथ सहमति प्रकट की और अपने तथा सगे-सम्बन्धियों के पूर्ण सहयोग का वचन दिया।

आधी रात तक विविध प्रकार के निश्चय करते करते उन दोनों की नींद ने सबेरा देख लिया। जब जागे तो रात के सारे निश्चयों को ढीला पाया! यह तय न हो सका कि 'मेटिंग कब की जाय।'

अन्त में,—'गरीबखाने पर तशरीफ ले चलिये वहीं सब बात तै हो जायगी,' इस निर्णय पर आते न आते मालिशी एक अनुरोध कर बैठा,—'सिगरेट खतम हो गये हैं। ज़रा चाय की भी याद आ रही है मुनासिब समझें तो कुछ मदद कर दें।' अर्थात् मालिश कराने का पारिश्रमिक दीजिये।

यात्री लपक कर मालिशी के कान के पास पहुँचा, कान के छेद को उसने ध्यान पूर्वक देखकर कहा, 'हजरत का कान ज़रा सी मरम्मत चाहता है।'

'क्यों? उसको क्या हो गया है, जनाब?'

'बेतरह मैल भरा हुआ है। खराब हो जायगा।' हजरत बहरे हो जायेंगे।'

'मगर मुझको सुनाई तो बहुत अच्छा पड़ता है।'

'बेहतरीन सुनाई पड़ने लगेगा। साफ करवा लीजियेगा।'

'कब? किससे?'

'कुछ खिदमत तो मैं ही कर सकता हूँ।'

'ख़ैर! कभी देखा जायगा। इस वक्त फिक्र बन्दे को दूसरे किस्म की है।'

'हज़रत के गुलाम की और हज़रत की फिक्र अलग नहीं है।'

'फिलहाल तो अलग है। मुझको बारह आने पैसे बख्शने की मिहरबानी फरमाइये।'

'बारह आने! किस बात के हज़रत?'

'क्या अर्ज़ करूँ?'

काफी 'अर्ज मारूज़' के बाद बात साफ़ हुई—वह मालिश कराने की बारह आना मज़दूरी मांग रहा था।

यात्री ने प्रतिवाद किया,—'बन्दे ने तो हज़रत बारह पैसे समझे थे !' मालिशी ने क्षोभ, और आश्चर्य प्रकट किया,—'बारह पैसे में तो मैं मालिश करने की बात भी नहीं करता।'

'तो हज़रत गिला शिकायत अभी रफा हुई जाती है' यात्री ने कहा, 'मैं कान साफ करने का मुआविजा बारह आने से कम नहीं लेता। मुझको हज़रत की मालिश से वह फ़ायदा नहीं हुआ जो मेरा कान साफ करने का करतब हज़रत को फ़ायदा पहुँचावेगा।'

'मगर मुझको तो कान साफ़ करवाना ही नहीं है।'

'लेकिन मुझको तो ख़िदमत करनी है।'

'तो आपका पेशा कान का मैल निकालने वाले का है।'

'मालिश करने के पेशे की बनिस्बत तो अच्छा ही है।'

'देखिये हज़रत मुझको गुस्सा आ रहा है।'

'तो जनाबआली बन्दा भी आध पाव आटे और छटाक भर शोरुये पर रवाँ होता रहता है।'

'हज़रत अजीब आदमी हैं !'

'आदमी होंगे जनाब, जबान सँभाल कर बात कीजियेगा। "दोनों की आंखें लाल पीली हो गई और दोनों ने अपनी अपनी आस्तीनें ऊपर को चढ़ाई, परन्तु कुर्तों की सफ़ाई या कुर्तों के किसी भविष्य ने विवेक को बेचैन कर दिया। दोनों एक दूसरे से कुछ फासले पर ही रहे।

मालिशी बोला, 'हज़रत बेहद खुराफाती हैं।'

यात्री ने कहा, 'जनाब बेइन्तहा बेअदब हैं।'

'आप क्या हंगामा करने पर आमादा हैं ?'

'जनाब क्या फसाद करना चाहते हैं ?'

'हज़रत बहुत बड़े दग़ाबाज हैं।'

'जनाब बहुत बड़े अहमक़ हैं।'

'अच्छा; देखूँगा कभी।'

'बन्दा भी तैयार रहेगा।'

मेरा अपराध ?

सन् १८६५ के जाड़ों की बात है।

लुई रुस्सेली फ्रान्स का नामी कलाकार और लेखक भारत यात्रा के लिये साल भर पहले चला और भ्रमण करता हुआ बुन्देलखण्ड में दूसरे वर्ष के जाड़े की ऋतु में आ गया।

उसने अब तक के भ्रमण में बहुत कुछ देखा था हाथी-घोड़े, पहलवान, सपेरे, नर्तकिया-नटबेड़िनी, मानमन्दिर-ताजमहल, झोपड़े खँडहर, राजा-रईस, अंग्रेज़ी पल्टने, गुड़िया गुड्डे, बड़े बड़े पशु और छोटे-छोटे मानव इत्यादि इत्यादि। इधर उधर के षटरस और छप्पन भोजनों का मज़ा लेने के बाद लुई बुन्देलखण्ड के छोटे-बड़े पहाड़ घने और बिखरे ऊँचे और नीचे जंगलों की मटरगश्त करता हुआ ओर्छे आया; नदियाँ देखीं, झीलें देखीं, राजाओं की तड़क-भड़क देखी और उनके अदब क़ायदे और उसके साथ ही अंग्रेज़ी इकबाल का आतङ्क देखा।

ओर्छे से नयेगाँव की यात्रा में दो तीन पड़ाव किये। अङ्गरेज़ मित्रों के साथ और उनकी सहायता से शेर मारे, तेंदुए मारे, रीछ सुअर और न जाने कितने जंगली जानवर। नयेगाँव पहुँचने के पहले जो पड़ाव किये वहां ठंड बहुत पड़ी। पर भोजन अच्छा पकाया गया। बना भी इतना कि उस दिन खा लिया और दूसरे दिन के लिये बचा लिया। नयेगांव में फिर वैसा स्वादिष्ट भोजन मिले और न मिले। बचाकर एक थैले में रख लिया।

लुई ने अपने फ्रान्सीसी बैरे से कहा, 'इसको सावधानी के साथ रख लेना। बासी और भी अधिक मज़ेदार रहेगा। नयेगांव में नाश्ता करेंगे।'

'पर नयेगांव में ऐसा ही फिर बना दूंगा' बैरे ने प्रतिवाद किया।

लुई ने हठ किया, 'नहीं जी, मैं बासी खाना चाहता हूं। बासी के स्वाद को ताज़ा नहीं पा सकेगा।' बैरे को मानना पड़ा।

उसने सावधानी के साथ भोजन चमड़े के एक थैले में रख दिया और सोगया।

प्रातः काल के पहले ही डेरा उखड़ गया। कुछ दिन चढ़े लुई और उसके साथी नयेगाँव पहुँच गये। सामान उतारा गया। हाथ मुँह धोकर नाश्ते की तैयारी हुई। चाय के साथ लुई ने रात के बचे हुये भोजन का थैला मँगवाया। थैला गायब! बहुत ढूँढ़ खोज की गई, परन्तु थैला न मिला। पोलिटिकल एजेन्ट से शिकायत की गई। बड़े साहब ने छोटे साहब को ताकीद की। छोटे साहब ने बड़े बाबू से। बड़े बाबू ने तहलका मचा दिया। पुलिस छूटी। जांच पड़ताल करते-करते पुलिस उस गांव में पहुँची जहां पहले दिन डेरा पड़ा था। गाँव घबरा गया। साहब के थैले की चोरी! पता लगाओ, पता लगाओ, नहीं तो गांव भर को डामर हो जायगा। निदान, पता लगाते लगाते पता लग गया। थैला गाँव के बाहर एक झाड़ी में से झाँक रहा था। झाड़ी को चारों ओर से घेर लिया गया। 'चोर इसीमें कहीं होगा, गांव वाले और पुलिस के अफ़सर चिल्ला उठे।

(२)

उनका अनुमान सही निकला। चोर उसी झाड़ी में था हल्ले-गुल्ले पर ज़रा सा भौंका दर्राया और फिर दुम हिलाता हुआ निकल आया। भौंका था वह अनजाने पुलिस वालों पर और पूँछ हिलाई उसने गांव वालों को देखकर जिनको वह पहिचानता था और जिसको गांव वाले पहिचानते थे। दरवाजे दरवाजे दुम हिलाकर गुजर करने वाला कुत्ता जो ठहरा।

एक गाँव वाले ने कहा, 'अरे ! यह कुत्ता थैले को उठा लाया था ! हम समझे थे, किसी आदमी ने चोरी की है' पुलिस वाले ने डपट लगाई 'तो यह चोरी ही न हुई ! अजीब मूर्ख हो ?'

गांव का मुखिया बोला, 'दरोगाजी ठीक कहते हैं, चोरी है, पूरी चोरी। अच्छा हुआ कि चोर माल समेत पकड़ा गया नहीं तो बड़े साहब का और अपने राजा का सन्देह हम सब गाँव वालों पर होता और हम लोगों को नुकसान भरना पड़ता,'

'नुकसान ही नहीं भरना पड़ता बल्कि अपनी कुछ खाल भी टपकवानी पड़ती,' पुलिस अफ़सर ने कानून की व्याख्या की। मुखिया और गांव वालों ने मन ही मन अपनी खाल टटोली और उसको सङ्कट से परे जान-कर चैन की साँस ली। पुलिस ने थैले को उठा लिया। कई जगह फटकुट गया था। भीतर थोड़ा सा ही 'स्वादिष्ट' भोजन कोने में इधर उधर पड़ा था और थैले की दीवारों से चिपका हुआ। बाक़ी कुत्ता खा गया था; थोड़े से को सुभीते के साथ निबटा रहा था, काँय काँय करके और दुम हिलाकर अपने सामने के टुकड़ों को बचा देने की अभ्यर्थना कर रहा था। पुलिस की आँख लाल पड़ी। कुत्ते को पकड़ लिया गया। उसने भागने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

पुलिस ने कहा, 'तुम्हारे गाँव में ऐसे आवारा कुत्ते है, जो साहबों का खाना और सामान चुरा ले जाते हैं !' ऐसे कुत्ते एक नहीं कई थे जो गाँव वालों का ही मोटा झोटा, बचा खुचा सामान ले जाते थे, परन्तु साहबों के सामान की चोरी उस गाँव के लिये एक नई दुर्घटना थी।

गांव वाले अवाक। मुखिया बोला,—'हुजूर कुत्ते ऐसे बे भाव बढ़े हैं कि ठिकाना नही, समझ में नहीं आता कि क्या किया जावे।'

'मार डालो।'

'हम अपने हाथों कैसे मारें ?'

इस दलील का पुलिस की गाँठ में कोई जवाब न था। उन सबका क्रोध उस एक-अकेले कुत्ते पर केन्द्रित हुआ। मुखिया ने अपने कांइएंपन को छिपाकर अनुरोध किया, 'इस कुत्ते को मार दीजिये। अपराध का दण्ड हो जायगा और गाँव से एक आवारा कम हो जायगा।'

'हम अपने हाथों कैसे मारें?' पुलिस के भी मन में सवाल उठा। परन्तु, अपराधी को दण्ड देना था और मुलज़िम माल के साथ गिरफ्तार हुआ था। गवाह, सबूत, मैजिस्ट्रेट किसी की भी ज़रूरत नहीं। पुलिस ने कुत्ते को मारना शुरू किया और कुत्ते ने चिल्लाना। जब मारने वाले का हाथ थक गया या मन, तब निश्चय हुआ कि माल और मुलज़िम को उन साहबों के सामने पेश कर दिया जावे जिनकी चोरी हुई थी। उन्हें भी मालूम हो जाय कि पुलिस कितनी मुस्तैद है और गांव वाले कितने कानून भक्त।

(३)

फटा हुआ थैला और अधमरा कुत्ता लुई और उसके साथियों के सामने पेश किया गया।

लुई के ओंठों पर हंसी आई। कुत्ता भयभीत करुण आँखों उन सब को देखने लगा। लुई की हंसी विलीन हो गई। क्षीण मुस्कराहट भर रह गई।

'कुत्ते को यहाँ पकड़ लाये?' लुई ने पूछा। उत्तर मिला, 'चोर को ठिकाने तक पहुँचाने का क़ायदा जो है, कुछ सज़ा हमने इसको दे दी है, गोली आप मार दीजिये।'

लुई की मुस्कराहट लुप्त हो गई। रूसो, वाल्टेर, विक्टरह्यूगो इत्यादि कलाकारों की पल्टन की पल्टन आँखों के सामने घूम गई।

लुई के मन में उठा, और, कण्ठ तक आया भी, 'ले जाओ इस बेज़बान को हमारे सामने से।'

कुत्ते की रीती आंखों और कराहते हुये कंठ से मानो निकल रहा था, 'मेरा अपराध ? मेरा अपराध ?'

लुई मन ही मन कुढ़ा,—'ये मूर्ख इस कुत्ते को हमारे सामने क्यों लाये ?'

पुलिस ने प्रार्थना की, 'हुजूर इसका कोई मालिक नहीं। गांव का आवारा कुत्ता है—मार दीजिये गोली।'

लुई के ओंठों तक पुलिस के लिये गालियों की एक बाढ़ आई। परन्तु वह रुक गया।

'अंग्रेज़ी राज का कितना इक़बाल है! उसका कितना आतङ्क छाया हुआ है !! यदि इन लोगों को डांटता फटकारता हूँ तो अंग्रेजीराज और, शायद, रियासत का भी अपमान होगा', लुई ने सोचा। घायल कुत्ते के दुबले-पतले शरीर और उन आंखों की तरफ़ लुई का ध्यान फिर गया। साथ ही अङ्ग्ज़ीराज के आतङ्क की ओर। बहुत धीमे स्वर में लुई ने कहा, 'छोड़ दो इसको। हम माफ़ करते हैं,'

'जैसी हुजूर की मर्ज़ी,' पुलिस ने बतलाया। लुई का ध्यान फटे हुये थैले और भविष्य में उसी कुत्ते द्वारा चोरी के किसी और रूप अथवा संस्करण के अनुमान पर गया।

बोला, 'नहीं दूर छोड़ देना, उसी गांव में,' पुलिस कुत्ते को घसीट ले गई। वह मानो पूछ रहा था, 'मेरा अपराध ?'❀

❀लुई रुस्सेली ने अपनी भारत यात्रा का वर्णन १८६७ के लगभग फ्रान्सीसी भाषा में सचित्र प्रकाशित किया था। उसका अङ्ग्ज़ी अनुवाद India and its native princes १८७० में छपा। इस घटना का वर्णन इस पुस्तक में है, जिसके आधार पर यह कहानी लिखी गई है।

राखी

जयसेन बी० ए० पास करके वकालत पढ़ने के लिये कालेज को चल दिया, क्योंकि किसी और काम के योग्य न था। कालेज की पढ़ाई के लिये गाँठ में दाम नाम मात्र को थे, परन्तु यह विश्वास प्रबल था कि ट्यूशन मिल जावेगी। और, वकालत की परीक्षा पास करने के पश्चात् तो— भगवान पेट भरने को देवेंगे ही।

कालेज में भर्ती हो गया। बोर्डिङ्ग हाउस में जगह मिल गई, खाने के लिये महीने भर को था, परन्तु कानून की पुस्तकों के लिये एक पैसा गाँठ में न था। उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने का व्यसन था, सो, यह शौक़ माँग-चूँग कर भी पूरा किया जा सकता था।

ट्यूशन की खोज में चोटी का पसीना एड़ी आ गया। बड़ी कठिनाई से एक मिली, २०) मासिक पर दो घण्टे नित्य। दो लड़कों का पढ़ाना। काम मज़े का था परन्तु लड़के कुशाग्रबुद्धि और ढीठ थे, मास्टर संकोची। सहसाप्रवर्ती लड़कों के पिता ने यह विपर्यय शीघ्र समझ लिया। एक दिन जयसेन से कहा, 'मैं प्राचीन परम्परा का आदमी हूँ। लड़कों को इनकी माँ और बहिन के प्यार ने धृष्ट बना दिया है। वैसे तो मैं बच्चों की मारपीट के ख़िलाफ़ हूं, परन्तु पुरानी कहावत भी बहुत गलत नहीं मालूम होती spare the rod and spoil the child और इसीलिये हमारे यहां बालकों को शिक्षक के सुपुर्द करते हुये अभिभावक कह देते थे, 'हड्डी हड्डी हमारी और सब शरीर तुम्हारा।' अतएव आप साम और दण्ड दोनों नीतियों का उपयोग कर सकते हैं।'

इस निषेध और निर्देश में बीच के मार्ग का संकेत पाकर जयसेन के मन में भविष्य के लिये अधिक उलझन नहीं रही, परन्तु लड़कों की समझ में आ गया कि अब हड्डी-पसली की खैर नहीं।

एक लड़के का नाम मनोहर था, दूसरे का नाम कुन्दन। मनोहर लगभग चौदह साल का था, कुन्दन उससे दो साल छोटा।

भविष्य को भयानक उपद्रव से भरा हुआ समझ कर दोनों ने अकेले में बैठक की।

'पिता जी से किसी बदमाश ने अपनी शिकायत की है। उदयराम की छोकरी को तुमने उस दिन ठोका था। उसी ने कसर निकालने की ठानी है' मनोहर ने कहा।

'उसने हमारे ऊपर धूल फेंकी हमने उसका मुँह दबोच दिया। और हुआ ही क्या था? अभी तो चुकावरा बाक़ी है। मेरी आंख उसी दिन से लाल है,' कुन्दन बोला।

'मैंने काफ़ी मार पीट करदी थी। एक दिन फिर खोपड़े पर दो-चार चपत रसीद कर दूँगा, तब सब चुक जावेगा। परन्तु लाला जी कान के बड़े कच्चे हैं।'

'कैसे?'

'उनसे हमारे खिलाफ़ कोई भी कुछ कह दें तुरन्त मान लेते हैं। वह स्वयं कोड़े मार दें तो इतना बुरा नहीं लगेगा, परन्तु मास्टर साहब तो गैर आदमी हैं।'

'हमको मारेंगे तो हम अन्न-पानी छोड़ देंगे।'

'और हमको मारेंगे तो हम बिना टिकट के रेलगाड़ी में बैठकर बम्बई कलकत्ता चले जावेंगे।'

'बम्बई-कलकत्ता क्या बहुत बड़े गाँव हैं? वहाँ क्या पता न चल-जावेगा?'

'वहाँ कोई किसी को नहीं ढूँढ सकता। सुनते हैं इतने बड़े स्टेशन हैं कि दिन-रात स्टेशन पर पड़े रहो और कोई पहिचान न सके।'

'वहाँ खाओगे क्या ?

'अरे खाने लायक मज़दूरी बहुत कर ली जा सकती है ।'

'तुम्हारे चले जाने पर मैं अकेला ही बहुत पीटा जाया करूँगा '

'तुम्हारे अकेले रह जाने पर मास्टर निकाल दिया जावेगा । मैं कुछ दिन बाद लौट आऊँगा, फिर कोई मास्टर नहीं रक्खा जावेगा ।'

'दीदी कहती है कि बिना पढ़े काम नहीं चल सकता ।'

'दीदी ठीक कहती हैं और ग़लत भी । उदयराम तो नाम भर लिखना जानता है, उसने हज़ारों रुपये कैसे पैदा कर लिये ? वह ऐसा कौन-सा बी० ए० पास है ?'

'उसके बाप ने दिये होंगे ।'

''बाप किसको कहाँ तक देंगे ? अपनी भुजों में बल होना चाहिये ।'

दोनों ने यह निश्चय कर लिया कि यह रहस्य अत्यंत गुप्त रक्खा जावे परन्तु उसी रात कुन्दन ने अकेले में दीदी को वह रहस्य कुछ बढ़िया रूप देकर सुना दिया । बोला,

'तुम लालाजी को समझा देना, चाहे मास्टर को डाँट देना । भैया कहते थे कि यदि मास्टर ने मारा-पीटा तो डन्डे से उनका खोपड़ा फोड़ कर परदेश भाग जायँगे । मेरा नाम लेना मत नहीं तो वह मुझसे लड़ जायंगे।

लड़कों की बहिन का नाम गंगा था । मनोहर से तीन-चार साल बड़ी थी । पढ़ी–लिखी थी । मन में ओज था, अविवाहित थी ।

उसने कुन्दन से पुचकार कर कहा, 'मार–पीट नहीं होगी । मैं निकट की खिड़की के पास बैठ कर तुम लोगों का पढ़ना-लिखना जाँचा–करूँगी । वहीं अपना सीना-पिरोना इत्यादि किया करूँगी, यदि मास्टर कभी मारने को हाथ उठावेंगे तो मैं सामने आ जाऊँगी । बस चिन्ता मत करो । मनोहर को भी समझा दूँगी ।'

'पर मेरा नाम मत लेना दीदी, कुन्दन ने अनुनय और भोलेपन के साथ अभ्यर्थना की ।

गंगा ने वायदा किया ।

(२)

जयसेन अपने पैमाने के हिसाब से दत्तचित्त होकर पढ़ाने लगा। लड़कों ने दो-चार दिन तो आदेश के अनुसार परिश्रम किया, परन्तु फिर उनका ध्यान छितराने लगा। शब्दों के अर्थ रटने और अंक गणित में दिये हुये प्रश्नों की पेचीदगियों ने उन बालकों को जमुहाइयों पर जमुहाइयाँ देना शुरू कर दिया। अङ्ग्रेज़ी की पाठ्य पुस्तक में जहाँ जंगली जानवरों के वर्णन, आत्मत्याग और मार-काट के आख्यान तथा खेल कूद की बातें आती थीं वहाँ उनका मन एकाग्र हो जाता था। एक दिन पाठ में फुटबाल के खेल का वृत्तात सीखने को मिल गया। लड़कों का चाव बढ़ा। मास्टर भी खिलाड़ी रहा था। उसने बन्द करके आप-बीती खेलों की घटनाएं सुनानी आरम्भ कर दीं। उत्साह में उस दिन दो घन्टे के बदले तीन घन्टे पढ़ाई में लग गये। मनोहर ने मास्टर की कमजोरी को अनुगत कर लिया और उसको आशा हो गई कि भविष्य में मार-पीट की नौबत नहीं आवेगी। गंगा ने भी खिड़की के पास उस रोज के पाठन का अधिकांश सुन लिया था। दूसरे दिन पढ़ाई के प्रारम्भ के थोड़े से मिनिट पीछे ही अपने स्कूल के एक खेल की चर्चा मनोहर ने उठायी। बोला, 'मास्टर साहब आज हमारे स्कूल में तो लाठी चलते-चलते बच गई।'

'कैसे ?' मास्टर ने भी रुचि दिखाते हुये पूछा।,

'दूसरी पार्टी के रैफ़री ने बेईमानी की।'

'कैसी बेईमानी ?' मास्टर ने फिर पूछा।

'हमारी तरफ वाले एक खिलाड़ी ने चालाकी से दुश्मन को धक्का दिया। वह गिर पड़ा। रैफ़री ने खेल को बन्द कर दिया। लड़के मुट्ठियाँ कस-कस कर दौड़ पड़े।'

रैफ़री तो पञ्च है। उसने ठीक समझा तो खेल बन्द कर दिया। पूरा ब्यौरा सुनाओ।' जयसेन बोला।

मनोहर ने खूब रंग देकर पंख का परेवा बनाया। इस पर मास्टर ने अपने कालेज की कुछ घटनायें सुनाईं जिसमें अनेक बार उसका निज का

इतिहास भी आया। इसमें काफ़ी समय निकल गया। मास्टर को आत्म-ग्लानि हुई। बोला, 'कल से यह गपशप बिलकुल न होगी।'

उस दिन के बाक़ी समय में जयसेन ने खूब मन लगा कर लड़कों को पढ़ाया। नियुक्त समय की समाप्ति पर उसने देखा कि खिड़की के पास से एक सुन्दर युवती उसकी ओर आँख गड़ाती हुई-सी देखकर चली गई। जयसेन ने जाते जाते सोचा, 'यह मेरा पढ़ाना सुनने के लिये यहाँ से होकर निकली है अथवा मुझे देखने के लिये?'

जब गङ्गा और लड़के इकट्ठे हुये, तो गङ्गा ने कुन्दन से पूछा, 'तुमने क्या पाठ पढ़ा है?'

कुन्दन ने उत्तर दिया, 'जो कुछ मास्टर साहब ने सिखलाया वह हमने सब याद किया है।'

'क्या-क्या?'

'बिल्ली का सबक़, चूहे का सबक़ और जो कुछ उन्होंने पुस्तक के बाहर का बतलाया वह सब।'

'वह सब क्या?'

'अरे दीदी यही कि खेल में टाँग अड़ा कर अपने विरोधी को कैसे मुँह के बल गिराया जाता है।'

गङ्गा हँसी, उसने मनोहर से पूछा, 'तुमने आज क्या-क्या सीखा?'

मनोहर ने उत्तर दिया, 'मेरी पुस्तक कुन्दन की पुस्तक से कहीं अधिक कठिन है।'

गङ्गा ने कहा, 'मुझको भी तो बतलाओ कि तुमको मास्टर ने क्या क्या बतलाया है?'

'तुमने खिड़की के पास से सब तो सुना है,' मनोहर ने उत्तर दिया।

(३)

जयसेन ने उस दिन के बाद फिर गपशप को पाठन समय में अधिक स्थान नहीं पाने दिया, परन्तु मन लगाकर पढ़ाते-पढ़ाते भी कभी-कभी

उसकी दृष्टि खिड़की की ओर चली जाती थी। दो-एक बार उसने साड़ी के कपड़े का छोर देखा और एकाध बार नेत्र और मुख। जयसेन को परिचय प्राप्त करने की उत्कण्ठा हुई। प्रसङ्ग की खोज में जयसेन को खेल खिलवाड़ों की चर्चा को सहमते-सहमते, सावधानी के साथ, उठाना पड़ा। मनोहर से प्रश्न किया—

कुन्दन से भी छोटा तुम्हारा कोई भाई है ?'

मनोहर ने उत्तर दिया, 'भाई कोई छोटा नहीं है, हुये थे, नहीं रहे। बहिन जरूर हैं जो हमसे बड़ी हैं।'

'वह तो बहुत पढ़ी-लिखी होंगी ?'

'उन्होंने मेम साहब से अङ्गरेज़ी पढ़ी है। हिन्दी के बहुत ग्रन्थ उनके पास हैं। पढ़ती ही रहती हैं। वह हम लोगों को अंग्रेज़ी पढ़ा सकती हैं। प्रायः हमारे सबक़ की जाँच करती हैं। मनोहर ने कुछ उत्साह से उत्तर दिया।

'मेरे पास भी कुछ ग्रन्थ हैं। यहाँ तो नहीं घर पर। जब छुट्टियों में जाऊँगा लेता आऊँगा। मैं कभी-कभी उनके ग्रन्थों में से पढ़ने के लिये ले लिया करूँगा यदि वह दे सकें।'

'क्यों नहीं दे सकेंगी ?' कुन्दन बोला।

'मैं कहूँगा। वह दे देंगी' मनोहर ने भी कहा।

'उन पुस्तकों में कोई अच्छी बातें तुम लोगों के लाभ की निकला करेंगी तो उनको मैं तुम्हें समझाया करूँगा।'

उन लड़कों को इस प्रस्ताव में भविष्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत और बड़ा चमत्कारपूर्ण दिखलायी दिया। मनोहर उठ खड़ा हुआ। बोला, 'एकाध पुस्तक तो मैं अभी लाता हूं। कौन-सी लाऊँ ?'

'कौनसी वह पसन्द करें।' बहिन कहाँ है मनोहर को यह मालूम था। पहुँचते ही उसने कहा, 'दीदी मास्टर साहब तुम्हारी एक किताब पढ़ना चाहते हैं।'

'पढ़ने के बाद आते। तुम तो समय को टालना चाहते हो।'

'सो नहीं दीदी। मास्टर साहब ने ज़िद करके भेजा है।'

'जैसे मैंने सुना न हो।'

'आज तो एक पुस्तक दे ही दो। फिर चाहे कभी मत देना।'

'पुस्तक अभी देती हूँ—और आगे भी दिया करूँगी, परन्तु सबक़ समाप्त करने के उपरान्त आया करो।'

गंगा ने ढूँढ़ कर एक पुस्तक मनोहर को दी। मनोहर ने उसका पढ़ लिया उसका नाम था 'प्रेमोपहार'। परन्तु गंगा ने उसको लौटा लिया और दूसरी पुस्तक 'भारत भ्रमण' दे दी। मनोहर ने 'भारत भ्रमण' जयसेन को दे दी। मास्टर ने पुस्तक हाथ में लेते ही कहा, 'पुस्तक बहुत अच्छी है, बड़ी रोचक है। मैं इसको पढ़कर इसके कुछ पाठ तुमको भी समझाऊँगा। भारतवर्ष का भूगोल और तत्सम्बन्धी अनेक बातों के समझाने में तुमको इससे बड़ी सहायता मिलेगी। इसको समाप्त कर लेने के बाद दूसरी पुस्तक लूँगा।'

मनोहर उतावली के साथ बोला, 'पहले वह एक और पुस्तक दे रहीं थीं।'

'उसका क्या नाम था?' जयसेन ने बिना किसी प्रकट उत्सुकता के पूछा।

मनोहर ने सहज उत्तर दिया, 'मैंने नाम पढ़ लिया था। नाम उसका "प्रेमोपहार" है।'

जयसेन के चेहरे पर एक हलकी-सी क्षणिक दमक दौड़ गई। अकस्मात् खिड़की की ओर उसकी आँख गई। साड़ी का एक छोर और एक आँख उसने देख ली।

किसी प्रयोजन के बिना ही उसने मनोहर से कहा, 'उस पुस्तक को भी पढ़ूँगा।'

मनोहर बोला, 'मैं दीदी से कह दूँगा, परन्तु अभी तो उन्होंने यह कहा था कि भूल से यह पुस्तक आ गई थी।'

'वह क्या इतनी ही बड़ी पुस्तक है?'

'नहीं वह तो छोटी सी पुस्तक है।'

'एक ही छापेख़ाने की छपी होगी।'

'उसका आवरण इस पुस्तक से ज्यादा बढ़िया है।'

विद्युत वेग के साथ जयसेन ने फिर खिड़की की ओर देख कर तुरन्त मुँह फेर लिया, परन्तु वहां कोई नहीं दिखलाई पड़ा।

उस दिन का पठन-पाठन विशेष दृढ़ता के साथ नहीं हुआ। चलते समय जयसेन की दृष्टि एकाएक फिर खिड़की की ओर गई। उसने गङ्गा की मुस्कराती हुई मुख-मुद्रा को देखा। गङ्गा वहां से तुरन्त हट गई। जयसेन चला गया।

(४)

पाठन की गति में उत्साह और शैथिल्य लगभग बराबर भाग लल चले जा रहे थे। लड़के खेल-खिलवाड़ में जितना सीख पाते थे उतना रटाने के ढङ्ग पर पढ़ाने से ग्रहण नहीं कर पाते थे। उनकी ढिठाई बढ़ती चली जा रही थी। मनोहर गप बनाने, समय काटने और आराम के साथ पढ़ने में आगे बढ़ता चला जा रहा था। कुन्दन उसकी परछाईं जैसा था। गङ्गा ने जयसेन को 'प्रेमोपहार' भी पढ़ने को दी और फिर 'त्याग' 'उत्सर्ग' इत्यादि उपन्यास भी। कुछ को तो जयसेन पहले ही पढ़ चुका था। परन्तु उसने इस बात को प्रकट नहीं किया। एक दिन मनोहर ने गङ्गा के हाथ के अंग्रेज़ी और हिन्दी में लिखे कुछ कागज़ दिये और कहा, 'दीदी पूछती हैं कि उनकी लिपि अच्छी है या नहीं। वह अपनी लिपि को सुधारना चाहती हैं। कहती थीं कि लिपि-सुधार के उपाय पूछना।'

मास्टर ने वे लेख पढ़े। कुछ तो छपी हुई पुस्तकों की नक़लें थीं और कुछ यात्राओं के वर्णन। एक पत्र भाई के नाम था जिसमें जयसेन के पढ़ाने और उसकी पाठन-परिपाटी तथा योग्यता की प्रशंसा थी।

जयसेन बोला, 'लिपि बहुत सुन्दर है, परन्तु बहुत सघन न लिखा करें।'

'मैं नहीं समझा। कैसे लिखें?' मनोहर ने पूछा।

'ज़रा फैला कर।'

'मुझसे तो आप कहते थे कि पास-पास लिखा करो।'

'तुम बहुत फैलाकर लिखते हो।'

'बहुत फैलाकर तो नहीं लिखता हूँ। आप स्वयं काफ़ी फैलाकर लिखते हैं।'

जयसेन ऊपर से मुस्कराया, परन्तु भीतर-भीतर लड़के ढिठाई पर खीझ गया। बोला, 'मैंने जो कुछ कहा है सो कह देना। बहस मत करो।'

'वाह! वाह! आप उस दिन कहते थे कि खूब बहस किया करो, खूब पूछा करो, जब तक शंका का समाधान न हो जावे यों ही मत मान लिया करो।'

जयसेन की ऊपरी हँसी और विकसित हुई और भीतरी खीझ और अधिक बढ़ी।

मनोहर कहता गया—'आप तो मुझको लिखकर दे दीजिये, आपके निर्देश के अनुसार वह लिखा करेंगी।'

जयसेन ने कहा, 'व्यर्थ हठ करते हो। यह तो साधारण बात है। बतला देना वह समझ जावेंगी।'

मनोहर बोला, 'दीदी ने यह भी तो कहा था कि जो कुछ लिखा है उसके विषय में राय लेना।'

'आज का पाठ पूरा कर लो फिर राय दूँगा। मैंने उनके लेख ध्यान-पूर्वक पढ़ लिये हैं।'

'फिर आप भूल जायेंगे।'

'कभी नहीं।'

'तो अभी क्यों नहीं बतला देते?'

खिड़की से खाँसने का शब्द हुआ, परन्तु दिखलायी कोई नहीं पड़ा।

मनोहर का मन पढ़ने में नहीं लग रहा था; जयसेन ने हठपूर्वक पढ़ाया। पाठ समाप्त होने के बाद जयसेन ने गंगा के लेखों के विषय में सम्मति दी—'ये सब लेख बहुत अच्छे लिखे गये हैं, भावपूर्ण हैं, सुरुचि संपन्न हैं और उनमें विनोद है।'

मनोहर मास्टर साहब के चेहरे को ताकने लगा। जयसेन विषय और विवेचना की क्लिष्टता को जानता था। बोला, 'फिर कभी ब्योरेवार समझाऊँगा, परन्तु तुम कदाचित समझ नहीं पाओगे, और यदि समझ भी लोगे तो ज्यों का त्यों उनको बतला नहीं सकोगे।'

मनोहर ने कहा, 'मुझको आप इतना बोदा न समझिये।'

जयसेन को मनोहर का यह कथन अखर गया, परन्तु वह चुपचाप चला आया। उसका मन खिन्न था। वह स्पष्ट अवगत कर रहा था कि उसका अपने शिष्यों पर अनुशासन नहीं है और यद्यपि लड़कों के 'लाला' पढ़ाई-लिखाई के सम्बंध में कभी कोई दखल नहीं देते—उनको शायद इतना अवकाश ही नहीं मिलता था,—परन्तु जयसेन जानता था कि देर-सबेर, कभी न कभी, जवाब देना पड़ेगा।

(५)

जयसेन ने लड़कों पर अनुशासन कसना शुरू किया। शिथिलता कम हो गयी, पढ़ाई में दृढ़ता अधिक आ गई। गपशप नाम मात्र को रह गई लड़कों का मानसिक क्लेश बढ़ने लगा और उनको ट्यूशन एक बड़ा बोझ मालूम होने लगा। इस पढ़ाई में उनके आनंद का केवल वह समय होता था जब गगा के ग्रन्थों या लेखों के विषय में जयसेन उत्साह के साथ चर्चा करता था। अनुशासन का भार असहनीय हो जाने पर मनोहर ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। कुन्दन स्वभावतः उसका साथ देता था। अन्त में एक दिन मास्टर ने अनुशासन को और किसी प्रकार स्थिर रहता हुआ न देख कर दोनों बालकों पर तड़ातड़ बेत जमाये पीटने के बाद जयसेन के मन में कुछ परिताप भी हुआ, परन्तु उसने उन शब्दों से सान्त्वना प्राप्त कर ली 'हड्डी-हड्डी मेरी और सब शरीर आपका।'

मनोहर बम्बई-कलकत्ते तो नहीं भागा। परन्तु उसने निश्चय किया, 'किसी दिन इस मास्टर को देखूँगा। कुन्दन ने तय किया, 'मास्टर हमको कभी हँसाने की चेष्टा करेगा तो हम कभी नहीं हँसेंगे और न कभी इससे अच्छी तरह बोलेंगे।'

दूसरे दिन मनोहर ने बन्द लिफ़ाफ़े में गंगा की चिट्ठी जयसेन को दी उसने तुरन्त पढ़ी। लिखा था :

श्री मास्टर साहब, नमस्ते।

आपकी योग्यता और सुन्दर व्यवहार पर सभी मुग्ध हैं। मैं तो आपका पढ़ाना बहुत दिनों से ध्यानपूर्वक देखती चली आ रही हूं। आप जैसे योग्य शिक्षक सौभाग्य से ही प्राप्त हो सकते हैं आप जब इन बालकों को पढ़ाते रहते हैं तो इस घर में एक आनन्द-सा छाया रहता है, और आपके पढ़ाने की बाट जोही जाती है। इन बालकों के माँ नहीं है। इसलिये कृपापूर्वक इनके शरीर को दण्ड न दिया जाय तो अच्छा होगा। मैं आपके सामने होती तो अपनी पढ़ाई के विषय में भी कुछ पूछती।

—गंगा

जयसेन ने इस पत्र को कई बार पढ़ा और उसके अनेक अर्थ लगाये। लड़के टकटकी लगाकर उसके चेहरे को देख रहे थे। पत्र को कई बार पढ़ने के बाद जयसेन ने खिड़की की ओर आँख उठायी। गंगा खड़ी थी। आँखों में मादक कोमलता थी और अर्ध-विस्फीत हास में कोई अजेय सम्वाद। उसने एक क्षण गंगा के इस रूप को देखा। उसमें उलहना और भर्त्सना नाम मात्र को न थी।

तुरन्त जयसेन ने कुन्दन को गोद में ले लिया और मनोहर को कन्धे से चिपटा लिया। खिड़की की ओर बिना देखे हुये ही उसने कहा, 'भाई तुम्हारी ज़िद्द पर मुझको क्रोध आ गया था इसीलिये मार दिया। आगे कभी ऐसा नहीं होगा।' कुन्दन तो रो दिया। मनोहर साँस भर कर रह गया, उसके बदला लेने के प्रण में कुछ ढिलाई आ गई।

पढ़ाने के बाद जयसेन उस दिन शीघ्र नहीं गया। वह एक पुस्तक में गंगा की उस चिट्ठी को रख कर पुस्तक पढ़ने के बहाने से बार बार उसको पढ़ रहा था।

दूसरे दिन सावन था। छुट्टी थी। पढ़ाने के लिये नहीं आना था, परन्तु जयसेन आना चाहता था। वह इसी सोच विचार में था कि कुन्दन ने आकर कहा, 'मास्टर साहब, दीदी कहती हैं कि कल आपको यहीं भोजन करना होगा। कल राखी का दिन है।'

जयसेन ने सहर्ष स्वीकार किया। बोर्डिंग हाउस जाकर रात में जयसेन ने गंगा की उस चिट्ठी को फिर बार-बार पढ़ा।

जयसेन के विचार अव्यवस्थित हो रहे थे। उसके मन में रह रह कर यह बात उठ रही थी कि 'गंगा उससे प्रेम करती है। किस तरह का प्रेम ? प्रेम या स्नेह ? जब तक पढ़ाता रहता हूं, घर में आनन्द छाया रहता। है एक आनन्द-सा ? बात एक ही है। पढ़ाने की बाट जोही जाती है। पढ़ाने की या मेरे आने की ? आपका पढ़ाना बहुत दिनों से ध्यान-पूर्वक देखती चली आ रही हूँ ! उसके नेत्रों में कितनी मादकता थी ! हँसी कितनी स्पष्ट थी ! उसमें कितना भयंकर आकर्षण था ! जिस दिन से देखा उसी दिन से वही भाव निरंतर चला आता है—बढ़ता ही जाता है ?' जयसेन ने सोचा, 'इसमें कुछ प्रोत्साहन मैंने भी दिया है।' उस रात जयसेन को बिलकुल नींद नहीं आई, विविध प्रकार के अनुकूल और विपरीत विचारों और संकल्पों में डूबता- उतराता रहा। परन्तु जब सबेरा हुआ तो वह चटपट बिस्तरे से उठा। उसके शरीर में विलक्षण स्फूर्ति थी। रात भर न सोने के कारण चेहरे पर जो श्यामता आ गई थी वह किसी चमक के कारण दब-सी गई। स्नानादि से निबट कर उसने एक चिट्ठी गंगा के नाम लिखी, लिफाफे में बन्द की और जेब में रख ली।

मकान पर पहुँच कर बड़े उत्साह के साथ मनोहर को बुलाया और कहा, 'कल का न्योता बैठा हूं। बहुत भूख लग रही है। जल्दी लगवाओ।'

मनोहर अपनी प्रतिहिंसा को भूल-सा गया। उसके मन पर ढिठाई फिर सवार हुई। बोला, 'इतने सबेरे मास्टर साहब कौन आपको खाना दे देगा?'

'मेरा मनोहर,' जयसेन ने सहज स्वच्छ हँसी के साथ उत्तर दिया।

मनोहर को अपने और अपने शिक्षक के बीच में अन्तर कुछ कम दिखने लगा। बोला, 'तो बैठक में चलकर पहिले एकाध गपशप सुनाइये तब खाने को मिलेगा,' और खूब हँसा। जयसेन की हँसी ज़रा फीकी पड़ी। परन्तु वह मनोहर के साथ बैठक में चला गया। उसको न तो कोई गपशप सुनानी पड़ी और न ज्यादा देर ठहरना पड़ा। खिड़की में से कुन्दन ने आवाज लगाई, 'मास्टर-साहब, इसी ज़ीने पर से चले आइये। भोजन तैयार है।'

मनोहर के साथ जयसेन ऊपर की अटारी पर पहुँच गया। सजधज के साथ थाल लगा हुआ था। एक ओर ऊदबत्ती जल रही थी। दूसरी ओर एक छोटी थाली में फूल मालायें रक्खी हुई थीं। बैठने के लिये आसनी बिछी थी और उसके सामने पटे पर विविध व्यञ्जनों वाला भोजन का थाल। हाथ-पैर धोकर जयसेन आसन पर बैठ गया। सामने रसोईघर था। किवाड़ की आड़ में गङ्गा खड़ी हुई जयसेन की ओर मुस्करा रही थी। जयसेन यकायक गम्भीर हो गया। उसने जेब में से एक लिफ़ाफा निकाल कर मनोहर के हाथ में दिया और कहा, 'बहिन को दे दो।' मनोहर ने लिफ़ाफा गङ्गा के हाथ में दे दिया। गङ्गा ने तुरन्त रसोईघर के एक कोने में जाकर चिट्ठी पढ़ी।

मनोहर ने जयसेन से अनुरोध किया, 'मास्टर साहब भोजन करिये। बैठे क्यों हैं?' जयसेन ने उत्तर दिया, 'ज़रा ठहरो। एक कसर पूरी हो जाने दो।'

गङ्गा ने चिट्ठी में पढ़ाः—

बहिन गङ्गा,

आज मैं यदि अपने घर पर होता तो मेरी बहिन मुझको राखी बांधती। यह भी मेरा घर है और तुम बहिन के समान। इसलिये मुझको राखी बाँधो, तब भोजन करूँगा।

तुम्हारा भाई
जयसेन।

चिट्ठी पढ़ने के कारण हो अथवा चौके की गरमी के कारण हो, गङ्गा को पसीना आ गया और उसका मुँह लाल हो गया। उसने पसीना पोंछा, दृढ़ संकल्प की एक-दो साँसें लीं और सिर उघाड़ कर वह जयसेन के सामने आ गई। अटारी के एक आले में कुछ राखियाँ रक्खीं हुई थीं। उनमें से एक राखी उठाकर मास्टर के पास आई। सिर नीचा किये हुये ही उसने कहा, 'हाथ पसारिये राखी बाँधूँगी।' जैसे ही जयसेन ? ने हाथ बढ़ाया, गङ्गा रुक गई। सिर उठाया। आँखों में मादकता नहीं थी, और न होठों पर मुस्कराहट, आँखों के कुछ डोरे लाल ज़रूर थे। बोली, 'पहले मनोहर को राखी बाँध दूँ। हमारे यहाँ रीति है।' मनोहर ने दृढ़तापूर्वक प्रस्ताव किया, 'नहीं पहले मास्टर साहब को।' जयसेन हाथ पसारे रहा, परन्तु उसका कलेजा भीतर धँस गया। गङ्गा ने तुरन्त कहा, 'अच्छा यही सही! मास्टर साहब पहले आपको राखी बाँधूँगी।' जयसेन का हाथ पसरा हुआ ही था, जैसे किसी कल का पुर्जा हो। गङ्गा राखी बाँधकर भीतर चली गई। फूल की मालायें वैसी ही रक्खी रहीं।

जयसेन ध्यान-मग्न होकर भोजन करने लगा। गङ्गा परोसने के लिये कई बार आई। सिर खोले, विस्फारित से स्थिर लोचन, बिना हास के दृढ़ सटे हुये होंठ। उसने उसी भाव के साथ अपने भाइयों को भी राखी बाँध दी और उनको खाना परोस दिया। खा-पीकर जयसेन बोर्डिङ्ग हाउस चला आया। रात का जागा हुआ था, इसलिये सन्ध्या तक खूब सोता रहा। जागने पर उसके रसोइये ने एक चिट्ठी उसको दी। बोला, 'एक कोई लाला हैं, उनका कहार यह लिफ़ाफा आपके लिये दे गया है।'

जयसेन ने लिफ़ाफा खोला, चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा था—

प्रिय जयसेन साहब,

मुझको अपने लड़कों के लिये अब आपकी ट्यूशन की जरूरत नहीं है। किसी दिन आकर हिसाब कर जाइये और आपका जो कुछ वेतन बाक़ी निकले लेते जाइये। आप पढ़ाते तो अच्छा हैं, परन्तु लड़कों की मारपीट ऐसी नहीं होनी चाहिये थी जैसे आपने हाल ही में की थी। ख़ैर अब उसकी कोई बहस नहीं।

आपका
लाला...

जयसेन ने देख लिया कि लिपि गङ्गा के हाथ की है और नीचे हस्ताक्षर बालकों के पिता के हैं।

क्यों? यह जयसेन की समझ में नहीं आया।

झकोला चारपाई

रामदयाल—कविता में उनका उपनाम 'दयालु' था—चारपाई पर जमे हुये उस दिन और उस समय भी लिखते ही चले जा रहे थे।

उनकी श्रीमती जी ने आकर विचारधारा को खण्डित कर दिया। आव देखा न ताव, बोलीं 'घसीटे जाओ क़लम और करे जाओ स्याही-कागज ख़तम। कल के लिये अनाज नहीं है और बच्चे को तो दो दिन से दूध ही नहीं मिला।'

'ठहरो भी,' रामदयाल ने विचारधारा को अखण्डित बनाये रखने की धुन में कहा, 'यह कल्पना यदि दिमाग़ से खिसक गई तो फिर हाथ नहीं लगने की।'

रामदयाल ने हठपूर्वक कलम का प्रयोग करने का प्रयास किया, परन्तु कल्पना ने विद्रोह कर दिया और न जाने कहां खिसक गई।

रामदयाल ने झल्लाहट को दबा कर क़लम को हाथ में थामा और बरबस मुस्कराते हुये पूछा, 'क्या एक दिन आगे के लिये भी नहीं है?'

उत्तर मिला, 'बिलकुल नहीं एक दाना भी नहीं।'

माथे पर क़लम को फेरते हुये लेखक ने श्रीमती जी से कहा, 'चिन्ता मत करो, मेरी कहानियों और कविताओं का संग्रह छप चुका है, रुपया आता ही होगा। प्रकाशक की चिट्ठी आ गई है।'

'कई दिन से तो कह रहे हो इस बात को।'

'आज निश्चयात्मक कहता हूँ। चिट्ठी आ गई है। अब ज़रा लिखूँगा ऐसा कि जिससे लक्ष्मी जी का माथा खुजलाने लगे।'

रामदयाल ने अपनी पत्नी को हँसाने के लिये अपनी कला का करिश्मा पेश किया था, परन्तु वैसा कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह मुँह बनाये ओठ बिरबिराती हुई चली गई, मानो कहना चाहती हो—भाड़ में जाय तुम्हारा साहित्य और लल्हे में पड़ें लक्ष्मी जी !

रामदयाल ने फिर ध्यान साधा, और क़लम चलाने लगे।

दिन भर के थके-मांदे और दूसरे दिन की चिन्ता को कल्पना द्वारा दबा देने वाले रामदयाल ने अपनी चारपाई पर शरीर को अंगड़ाइयों के साथ फैलाया। कल्पना की टक्कर ने नींद को कुछ समय तक दूर रखा। मन में एक विचार जागा—'यदि सरकार लेखकों के आमोद-प्रमोद के लिये किसी वन-वेष्ठित, सजल ऊँचे स्थान पर निवास इत्यादि बनवा दे, जैसे उसने अपने लिये शिमला, नैनीताल, पचमढ़ी, दार्जिलिङ्ग इत्यादि में बनवा रखे हैं, तो बड़ा ही अच्छा हो—और कुछ रुपये का भी प्रबन्ध कर दे !' नींद तो कल्पना के भय के मारे आ ही नहीं रही थी, उचट कर बैठ गये। चारपाई झकोला थी; उसमें रामदयाल लगभग तीन चौथाई दिखलाई पड़ रहे थे। पत्नी को इस आकस्मिक प्रयोग पर कुछ शंका हुई।

पूछा, 'क्या है जी ? क्या बात है ?'

प्रसन्न स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया, "एक बड़ी बढ़िया सूझ मन में उठी है। उस पर कल ही कुछ लिखूंगा।"

पत्नी के मुंह से निकला, "ओह !"

रामदयाल ने अपनी कल्पना और योजना प्रकट की पत्नी को हँसी आई—उसको, जिसने दिन में मुस्कराने से भी नाहीं कर दी थी। रामदयाल ने अपनी बात को और आगे नहीं बढ़ाया। मन को थोड़ा-सा मार कर उसकी हँसी पी गये और फिर लेट गये। थोड़ी देर में नींद आ गई।

सुन्दर सुहावना पहाड़, ऊँचा; उसके पास की श्रेणियां और भी ऊंची होती चली गई थीं। दूरी पर नीची पर्वत-मालाएं, जिनसे बादल मचल-

मचल कर टकरा-टकरा जाते थे। सुनहली रवि-रश्मियां उद्यान के रंग-बिरंगे फूलों के साथ अठखेलियां कर रही थीं। पवन-विडोलित वृक्षों की हरी-भरी पत्तियां प्रकाश और छाया के निरंतर क्रम में प्रकृति को प्राण दे रही थीं। रामदयाल ने देखा, वसन्त या वसन्त का कोई प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध सखा यहां सदा बना रहता है। कल्पना ने कविता को हिंडोल दी और रामदयाल ने मुखरित होने की ठानी। परन्तु; जैसे हर पल और प्रत्येक पग पर टोका जाना भाग्य में लिखा कर चले हों, किसी ने पुकारा, 'दयालुजी! दयालुजी !!'

मुड़ कर देखा तो 'सुन्दर-निवास' से एक मित्र पुस्तक हाथ में लिये चले आ रहे थे।

'दयालु जी, यह पुस्तक छपकर आ गई। एक बढ़िया आलोचना भी साथ में है,' मित्र बोले।

पुस्तक पर लिखा था 'कहानी-संग्रह।'

पुस्तक को हाथ में लेकर 'दयालु जी' ने कहा, मेरा कहानी-संग्रह भी छप कर आज ही आया है। तुम को दिखला नहीं पाया। कविता-संग्रह भी कल आता होगा, और रुपये भी।'

'अजी रुपये आवें या न आवें। यहां रंग-बिरंगे फूल हैं; और भी ऐसा कुछ है, जिससे फिर किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती। कुछ फूल तोड़ कर चलो घूमें। मित्र ने प्रस्ताव किया।'

दयालु जी ने अस्वीकृत किया, 'इन सुन्दर फूलो को तोड़ कर, सूंघ कर, फिर धराशायी कर दोगे न? प्रकृति के ये वरदान कविता-कामिनी के श्रृंगार हैं। इनको तोड़ना नहीं चाहिये। वह तुम्हारा 'ऐसा कुछ है यहां कि जिससे किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती,' कहां है? वहीं चलो।'

वे दोनों आगे बढ़ गये। देखा कि एक पेड़ पर अशर्फियां, रुपये, नोट लगे हुये हैं।

'यह है वह कुछ ऐसा, जो मैंने कहा था,' मित्र ने बतलाया।

उसको देखते ही वे दोनों बेतहाशा दौड़ पड़े। परन्तु केवल वे ही नहीं दौड़े। उनको एक ओर से एक भीड़ और भी आती हुई दिखलाई पड़ी, जो इसी पेड़ की ओर दौड़ी आ रही थी। उस भीड़ के हाथों में भी पुस्तकें थी।

दयालु जी के मुँह से निकला, 'इतनी बड़ी भीड़! इस पेड़ की छाल भी नहीं बचेगी!'

वह सबसे पहले पहुँचने के लिये आगे बढ़े। एक ठोकर खाई और हाथ के बल गिर पड़े।

* * * *

आंख खुल पड़ी। झकोला चारपाई की पाटी पर हाथ गिरा हुआ रखा था। रामदयाल ने इधर उधर देखा। वहां न सरकार का बनवाया हुआ कोई निवास-स्थान था और न कोई उद्यान। थी केवल झकोला चारपाई लम्बी 'हूँ' करके रामदयाल ने आंखें मूँद लीं।

अपनी बीती

मैं श्यामसी में था, जहाँ रेल, तार, डाक, सड़क-वड़क कोसों तक कुछ नहीं। झांसी जाना था। बैलगाड़ी ही एक मात्र साधन। बेतवा बीच में। नाव खेने वालों की मर्जी, जब चाहे लगावें, न लगावें। दस ग्यारह घंटे झांसी जाने के लिये चाहिये। उतरती मई का महीना। दिन में तेज लू। पर झांसी पहुँचना था—बुन्देलखंडी के लिये लू और जंगल एक सामान्य बात है। गाड़ी ऐसी कि जिसके पहियों की पुठियां टूटी-फूटी और कुछ झकोली भी। उस पर लोहे की हाल जजर-पजर। पर जाना तो उसी पर था। पहियों पर सांझ को ही पानी की ढलाई करवाई, जिसमें उनके अरें और पुठियां फूलकर तन जायें और लोहे की हाल ढीली न रहे। सामान बांध लिया। रात के चार-पांच घंटे सो लेंगे। फिर तीन बजे रात से चले और एक दो बजे दिन को झांसी पहुँचने में शंका ही क्या हो सकती थी? यदि नाव वालों ने घाट पर देर ही लगादी तो चार बजे घर पहुँचने से तो फिर कोई रोकता ही नहीं! यदि मार्ग में गाड़ी के पहिये बिखर गये? नहीं, घाट तक तो पहुँचा ही देगी, और फिर इखर-बिखर गई तो गाड़ी वाला सुधार कर पीछे ले ही आयगा। मैं पैदल घर पहुँच जाऊँगा, क्योंकि घाट से घर ग्यारह मील की ही तो बात थी।

इतने में एक राहगीर ने समाचार दिया—"आपके एक मित्र की मोटर यहीं लिवा ले जाने के लिये आ रही है।" बैलगाड़ी के इखरे-बिखरे पहियों का चित्र लुप्त हो गया और मैं खटिया पर जा लेटा। थोड़ी सी नींद आई थी कि एक भर्राटा सुनाई पड़ा और बिजली की तेज

रोशनी। लगभग आधीरात थी। आँख खुल गई। देखूँ तो मित्र की मोटर। दो परिचित भी उसके साथ। मैंने ड्राइवर से कहा, 'पाँच बजे, बड़े भोर, चल देंगे।' वे सब सो गये और मैं भी—चैन की तान कर। सवेरे कुछ खाने पीने का आयोजन करते-करते एक घंटा लग ही गया। छः बजने में ठीक पन्द्रह मिनट थे कि हम लोग चल दिये।

लगभग पाँच मील चले थे कि मोटर ठप। ड्राइवर ने बतलाया, "मोटर पुरानी है, लेकिन एञ्जिन प्रबल है, केवल एक कसर है—पेट्रोल को कभी-कभी ठीक तरह से नहीं खींचता···।"

मोटर की भाषा में उसने कुछ पुर्जों के नाम बतलाये, जिनके यकायक असहयोग के कारण एञ्जिन की साँस में बेतावी आजाती है।

मैंने सोचा, पैट्रोल की दरिद्रता के इस जमाने में कहीं पैट्रोल न कम आया हो साथ में। पूछने पर आश्वासन मिला—"पैट्रोल तो काफी ले आये हैं।"

मैं उस आश्वासन के मूल्य को कम नहीं करना चाहता था, वैसे मनमें सवाल उठा, कितना पैट्रोल ले आये हो? और फिर यह युग विशेषज्ञों का है। मोटर विशेषज्ञ की बात पर अविश्वास प्रकट करना अपनी मूर्खता प्रकट करना होता।

ड्राइवर ने इधर-उधर कील-कांटे घुमाये, परन्तु एञ्जिन टस से मस न हुआ। तब ऐसी हालत में हमेशा से जो होता आया है वह किया गया, अर्थात् ड्राइवर ने अपनी सीट पर बैठकर चक्के को थामा और हम तीनों मोटर-मतङ्ग को कस लगाकर धक्के देने लगे। और कुछ दूर उसको रेल-पेल कर सफल होकर ही रहे—एञ्जिन धक-धक कर उठा। हांफते-हूंफते गाड़ी में जा बैठे। वह सतयुग से बर्ते जाने वाले उस मार्ग के कंकड़ों को कुचलती, धूल के बादल उड़ाती हुई चल दी। सवेरे का समय था और धूल हम लोगों की थोड़ी-थोड़ी ही मरम्मत कर रही थी। मोटर की सीटें सुधार-संवार के लिये चीख़-चीख पड़ रही थीं—फटी हुई थीं और उनके नीचे के जंग खाये हुये स्प्रिंग उतना उछल नहीं रहे थे,

जितनी त्राहि-त्राहि कर रहे थे। मुझको बैलगाड़ी का स्मरण हो आया। यदि इसी यात्रा को उस पर करना पड़ा होता तो ? वह कंकड़ों-पत्थरों को कूटती-पीटती, कंकरीली धूल की मोटी पर्तों को शरीर पर पसीने के साथ सानती-जमाती चलती। और फिर उसकी सीट। दस पाँच हजार बरस पहले जैसी थी, आज भी वैसी ही है—गाड़ी के ढाँचे पर घास, उसके ऊपर टाट और टाट पर एक मोटा सा कपड़ा। घास में कुछ लम्पे—काटे भी होते जो टाट और मोटे कपड़े के कवच को छेद-भेद कर जाँघों में—और न जानें कहाँ-कहाँ—चुभते-चिपकते। फिर ऊपर छाया के लिये एक साधारण कपड़ा जो सूर्य देवता के चढ़ते हुये मिजाज को न संभाल पाता। मैंने मोटर को एक बड़ा वरदान समझा।

मोटर घाट पर पहुँच ही तो गई। घर वहां से केवल ग्यारह मील। पन्द्रह मील का बीहड़ मार्ग तै कर आये तो अब ग्यारह मील की बिसात कितनी ? परन्तु चौड़ी बेतवा बीच में, और नाव उस पार। ड्राइवर ने भोंपू पर भोंपू बजाये। नाव अचल थी और ठीक डेढ़ घण्टे तक बनी रही। जब आई, तब भी सोचा—हर्ज भी क्या हुआ; बैलगाड़ी से आये होते तो अभी यहाँ तक पहुँचने की नौबत ही न आती। आखिर एक घंटे में उस पार लग जायेंगे और फिर एक सपाटे में घर।

लगभग एक घण्टे में नाव उस पार हो गई। ११ बजे होंगे। घाट की ऊँचाई पर एक बड़ा छायादार पेड़ है। नाव से उतर कर मैं इसके नीचे आ गया। पेड़ के पास ही एक टूटा-फूटा शिवालय है। मैं वहीं टहलने लगा।

नाव में कुछ बैलगाड़ियां भी थीं। वे उतर कर घाट पर चढ़ गईं और चल दीं। नाव को छोड़कर खिवैये अपने बिलकुल पास वाले गाँव में भोजनों के लिये चले गये अब मालूम हुआ कि मोटर का वह प्रबल एञ्जिन फिर किसी करामात के लिये मचल गया है। ड्राइवर को अपने ऊपर विश्वास था—सब विशेषज्ञों को होता है। वह उस कड़ी धूप और

तेज़ लू में थोड़ी देर एन्जिन के कभी ऊपर और कभी नीचे से कील-कांटों को खोलत-बन्द करता रहा। अन्त में, जब देखा एन्जिन उसके किसी दाव पेंच पर नहीं चढ़ रहा है, तब नाव के भीतर अपने दोनों साथियों सहित सुस्ताने के लिये जा बैठा। सवेरे का खाया हुआ पच चुका था। कम से कम दो मील की दूरी तक कोई ऐसा गाँव न था जहाँ बनिये की दूकान से कुछ मिलता। साइकिल वहाँ कोई थी नहीं कि जाकर वहां से कुछ खाना ले आते। इसलिये बेतवा की उष्ण जलराशि में से अञ्जलियों द्वारा भूख को ठण्डा किया गया। मैं श्यामसी से दूध पीकर चला था—और 'यात्रा में पेट को हलका रखने' का सिद्धान्त वाला—इसलिये कुछ नहीं आंसा। दम लेते लेते अचेत मन से उस एन्जिन पर विजय पाने की कोई सूझ मिल जाय, इसलिये वे तीनों नाव की भीतर की छाया में बैठे रहे। और मैं उस पेड़ के नीचे बैठते-उठते टहलता रहा। इतने में एक साइकिल वाला ग्रामीण उस पेड़ की छाया के नीचे आया। वह मुझको पहिचानता न था, तो भी उसने 'राम राम' की, साइकिल पेड़ से टिका दी, जूते उतार दिये और मन्दिर की छाया में चला गया।

वहाँ एक लड़का नदी से घड़े में पानी ला लाकर थोड़ी दूर खपड़े पाथने के लिये गार में पानी डालता रहा। मेरा ध्यान कहीं और था, इसलिये लड़के को एकाध बार ही लक्ष्य कर पाया।

थोड़ी ही देर बाद साइकिल वाला मन्दिर में से निकला और अपनी साइकिल के पास आया। देखा तो जूते गायब! उसने बहुत इधर-उधर टोह-टाप की, परन्तु न मिले। मेरे पास कुछ झिझकता हुआ आया।

"आपने मेरे जूते देखे?'

'नहीं तो।'

'पर यह तो आपने देखा था कि मैं यहां पहिन कर आया था, जब आप से राम राम की।'

'हां, हां।'

'फिर कौन ले गया मेरे जूते ?'

'मुझको नहीं मालूम ।'

'देखिये साहब, दिल्लगी मत करिये, मैं गरीब आदमी हूँ... ।'

'नही, भाई मेरे !'

उसने फिर इधर उधर टटोल की और मेरी ओर ध्यान-पूर्वक देखने लगा । उसकी आंखों में सन्देह था ।

मैंने पूछा, 'कहीं तुम मन्दिर के पास तो नहीं उतार आये हो ?'

'नहीं तो, उसने संक्षिप्त और दृढ़ उत्तर दिया ।

मैंने टहलने के लिये पैर उठाये । वह बोला, 'यहां से कौन चुरा ले गया ?'

'मुझको नहीं मालूम !'

'देखिये ऐसा भी क्या ?'

अर्थात् उसका सन्देह दिल्लगी और चोरी के बीच में भटकने लगा । मुझको हँसी आ गई; उसके चेहरे पर झेंप । इतने में घड़े वाला वह लड़का आ गया । जूते वह पहिने था । उसको अपने जूते झीखते-घसीटते हुये देख कर साइकिल वाले की जान में जान आगई और मुझको और भी हँसी ।

साइकिल वाले ने जूते पहिनते हुये कहा, 'बाबूजी, क्षिमा करना ।'

'कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, मैंने अपनी हँसी के प्रवाह को रोक कर कहा । वह चला गया ।

एक बज गया था । मुझको मोटर की याद आई । ड्राइवर को आवाज दी । वे तीनों आ गये ।

ड्राइवर ने निराशा प्रकट की, 'एन्जिन तो कुछ ऐसा बिगड़ गया है कि ठीक ही नहीं होता ।'

'फिर ?' मैंने विशेषज्ञ से अपील की ।

ड्राइवर ने मुस्खा पेश किया, 'बिना धक्के के नहीं स्टार्ट होगा ।'

धक्के ! घाट नाव की सतह से बहुत ऊँचा । हम लोग केवल चार जीव और मोटर मतङ्गी हम लोगों की सम्मिलित शक्ति के मुकाबले में बहुत भारी-भरकम । कैसे ऊपर तक आवें ? ऊपर आने के बाद फिर धक्के देकर दौड़ाई जाय, तब एन्जिन देवता चलने का नाम लें ।

अन्त में एक हल निकल आया । खिवैयों को गाँव से लिवा लायें और फिर धक्के देकर मोटर को ऊपर ले जायं । ठीक । सर्वसम्मति से तै हो गया । गांव से खिवैये आ गये, मोटर नाव के पटियों से नीचे उतरी, परन्तु उसका ऊपर पहुँचना दुष्कर था । किन्तु दुष्कर को सहज किया जा सकता है हम सबने सोंचा और मोटर को धकियाने पर चिपट गये । उधर नीचे नील-सलिला बेतवा, इधर उसका हिलोड़ों पर हिलाइँ देने वाली पछाहीं लू, जो अपने साथ ककड़ीली धूल के थपेड़े पर थपेड़े दे रही थी मानों किसी कवि की कल्पना चांटे खा रही हो । हांफते हांफते, धूल फांकते फांकते, पसीने में लतपत, मोटर को हम लोग बहुत ही धीरे-धीरे ऊपर की ओर चढ़ा पा रहे थे जैसे कुछ लोगों का स्वर्ग दुष्प्राप्य होता है । ड्राइवर का एक साथी दुःख में बहुत त्रस्त था । कहीं इसको लू न लग जाय—मैंने सोचा । सुना था कि दुनिया भर की सान्त्वना से बढ़ कर बल हँसी में होता है । तो इसको कैसे हँसाऊं ? मन में सवाल उठा । मोटर महारानी के यश गान के सम्बन्ध में यदि मैं कोई कविता बनाकर सुनाता चलू तो वह और मेरे अन्य सहयोगी मजे में यह सब सह लेंगे । परन्तु कविता करता कौन ? यहां तो तुक बन्दी में ही खलल है । तो अतुकान्त ही सही—मुक्तक । परन्तु उसमें कुछ कारीगरी फिर भी चाहिये । लेकिन मुक्त मन के लिये कारीगरी की अटक ही क्या ? मैंने मोटरदेवी और एन्जिन-देवता की स्तुति शुरू कर दी—पागल पद्य और बौखलाये हुये गद्य में-ऐसा मिश्रण, ऐसी कविता, जो किसी भी परिभाषा की सीमा में नहीं बांधी जा सकती । उसका प्रभाव तत्काल हुआ । वह बिचारा तो हंसा ही, दूसरे धकियाने वाले भी हँस पड़े और हँस हँस कर मोटर को ऊपर

ले जा कर ही रहे। उसी समय थोड़े से धक्के और देकर मोटर स्टार्ट करके चल देने की सूझ मेरे मन में आई, परन्तु साथियों की भूख प्रचंड हो गई थी, इसलिये उस सूझ को साकार रूप नहीं मिला। परन्तु खाने को ?

खोजने पर पता चला कि खिवैया के गांव में सत्तू और सम्भवतः शकर भी मिल जायगी। मंगाई गई; ठंडा पानी भी आ गया। परन्तु सत्तू कुल दो पाव ही मिला। पानी और शकर के प्रताप से उसका वजन बढ़ाया जा सकता था, और बढ़ाया गया। मुझको तो खाना ही न था। उन लोगों ने भूख को ठन्डा किया। दो ढाई बज गये। सोचा, अब पहुंचे और अब पहुँचे घर।

ड्राइवर ने एन्जिन के ढक्कन (बोनेट) को उघाड़ कर एन्जिन को नमस्कार किया, कुछ देखा-भाला और फिर मोटर को धक्के देने शुरू किये। मोटर स्टार्ट हो गई। हम लोग हर्षपूर्वक सीटों पर जा बैठे। गाड़ी मुश्किल से १०० गज चली होगी कि यकायक एक शब्द हुआ 'फस्स !' यह पहिचाना हुआ शब्द था। ड्राइवर ने हँस कर कहा, 'ट्यूब में पंचर हो गया है।'

मैंने प्रस्ताव किया, जोड़ लो' क्योंकि फालतू पहिया गांठ में नहीं था।'

"मसाला सब खतम हो गया है," ड्राइवर ने रहस्य का उद्घाटन किया।

दूसरा प्रस्ताव—"दूसरा ट्यूब डाल लो न।"

दूसरे रहस्य का उद्घाटन—"दूसरा ट्यूब है ही नहीं।"

मेरी स्मृति में बैलगाड़ी का चित्र बिजली की तरह कौंध गया। यदि उससे यात्रा की होती और पहियों के अरे या पुट्ठे बिखरे पड़े होते तो ! आश्वासन मिल गया—उससे तो यह मोटर ही अच्छी। और हम लोग बिना किसी सलाह के एक साथ हँस पड़े।

अब क्या हो ? इस सवाल को वह हंसी अधिक समय के लिये नहीं टाल सकती थी।

सड़क के दोनों तर्फ लहराते हुये पेड़ों की ओर साथियों का ध्यान आकृष्ट करते हुये मैंने कहा, "इन पेड़ों के पत्ते टायरों में भरो और धीरे धीरे चल दो। मैंने एक दो बार पहले भी सफलता के साथ यह प्रयोग किया है।"

उन लोगों को यह सुझाव पसन्द आया। पेड़ों पर चढ़कर काफी पत्ते तोड़ लिये और टायर में ठूंस-ठांस दिये। टायर तो मान गया, परन्तु एन्जिन क्यों मानने चला था? फिर वे ही धक्के। एन्जिन चला, परन्तु एन्जिन के ढक्कन ने पर निकाले और फैलाकर लगा मचाने 'फटाफट' 'झनाझन'। ढक्कन के बोल्ट अपनी सुविधा पा कर कहां चल बसे थे?

दो-तीन मील निकल गये—उसी फटाफट और झनाझन के साथ गाड़ी कुछ तिरपट तो चल ही रही थी, अब वह लगातार त्रिकोण बनाने लगी।

ड्राइवर ने बतलाया, 'टायर में से पत्ते बाहर निकल गये हैं।'

मैंने हँसाया, "और भरो! आओ फिर हम लोग लंगूरों के समान पेड़ों पर चढ़कर पत्ते तोड़ें और टायर में भरें।"

"कहीं टायर भी न फट जाय," ड्राइवर ने भय प्रकट किया। फिर टायर को देखदाख कर उसने कहा, 'अभी तो कुशल है।'

"और आगे भी रहेगी," मैंने आशा प्रकट की। फिर वही लंगूर क्रिया जारी हुई। पत्ते तोड़-तोड़ कर नीचे डाले गये और टायर में भरे गये। इसके बाद फिर धक्के!

मोटर चल पड़ी। तिरपट चली और लू ने आँधी का रूप पकड़ा। एन्जन का ढक्कन और भी अधिक फटाफट-झनाझन कर उठा। लू के तमाचे हम लोगों के मुंह पर पड़ने लगे। ड्राइवर की त्योरी पर कुछ क्रोध की मात्रा आई।

फिल्मों के प्रकृत-संगत (मूड म्यूजिक) के प्रसंग का मैंने कुछ अध्ययन किया था। सोचा, मोटर की तिरपट चाल और लू के चौपट वेग से उत्पन्न

किया हुआ बोनेट (ढक्कन) का यह संगीत किस मूड का साथ दे रहा है ? भीतर से ही उत्तर मिला—तुम लोगों की लड़ाई और हंसी का। तो और भी सही।

ड्राइवर से कहा, "अपनी मोटर हवाई जहाज से होड़ लगा रही है, बोनेट के दोनों पल्ले हवाई जहाज के पंखे हैं, मोटर की तिरपट चाल उसका पैट्रोल और लू उसकी 'पायलट' है। सोचो ये सब मिलकर किस राग को गा रहे हैं ?'

ड्राइवर हंस पड़ा। वे दोनों साथी भी।

ड्राइवर ने टेका लगाया, "हम लोगों के मुंह पर लू के जो तमाँचे पड़ रहे हैं, वे इस राग की ताल हैं।"

ड्राइवर गाड़ी को हँसते-हँसते दो मील और घसीट ले गया। इसके बाद ठप।

"अब की बार क्या हुआ ?"

"देखता हूँ।"

ड्राइवर ने देखा। पैट्रोल समाप्त। गाठ में एक बूंद भी नहीं। "काफी पैट्रोल लेकर घर से लेकर चले थे, परन्तु एंजन की खींचा-तानी में सब स्वाहा हो गया," ड्राइवर ने व्याख्या की।

परन्तु हम लोगों के पास सुझावों की कमी न थी। एक सहज ही उपस्थित हुआ—"अब तो हम झाँसी-कानपुर सड़क पर हैं, कोई न कोई मोटर आती होगी, उससे पैट्रोल ले लेंगे।"

"और एक ट्यूब भी," मैंने संशोधन का समर्थन किया।

मोटर-देवी को एक ओर छोड़कर हम लोग एक पेड़ के नीचे जा बैठे।

सलाह हुई, "जब तक कोई मोटर नहीं आती है, तब तक पानी ही पी लें।"

डोर-लोटा साथमें था। एक कुए के पास गये। उसमें पानी ही न था।

मैंने कहा, "अपने पुराणों में वायु और वरुण देवता का साथ है। यह लू कुएं में पानी क्यों रहने देने लगी ? मोटर का बोनेट उतारो और हैंडल की ठोकरों से एक नया राग बजाओ; एक न एक मोटर आ कूदेगी।"

फिर हँसी।

कुछ समय उपरान्त एक मोटर आई। ड्राइवर की जान पहिचान वाला उसे चला रहा था। पेट्रौल मिल गया और एक ट्यूब भी।

'भगवान जब देते हैं तो छप्पर फोड़ कर देते हैं।

इस तरह हम लोग छः बजने में पाँच मिनट पर घर पहुँच गये, ठीक बारह घण्टे और १० मिनट में २६ मील की यात्रा करके।

घर पर खाना तैयार था, पर हँसी से मेरा पेट इतना भर चुका था कि काफी देर तक भूख ही नहीं लगी।

जब मोटर के मेरे मित्र मुझको मिले, बड़े संकोच में थे। बोले, "वैसे इस मोटर ने कभी इतना परेशान नहीं किया··आपको उस दिन बड़ा कष्ट हुआ।"

मैंने प्रतिवाद किया, "उस दिन की यात्रा ने जितनी हंसी मुझको दी और उस हँसी से जितना बल मुझको मिला, उसको कभी नहीं भूलूँगा।"

रिहाई तलवार की धार पर

निदान बन्दा बैरागी और उसके सात सौ सिख साथियों के क़तल का दिन आ गया। ये सब बन्दा के साथ गुरदासपुर से क़ैद होकर आये थे। बन्दा ने स्वयं खून की होली खेली थी, इसलिये उसके मन में किसी भी प्रकार की दया की आशा या प्रार्थना न थी। वह और उसके सिख साथी मरने में रत्ती भर भी झिझक अनुभव नहीं कर रहे थे।

बादशाह फरुख़सियर की आज्ञा नित्य सौ के सिर उड़ाये जाने की थी।

आश्चर्य यह था कि मारे जाने की घड़ी की ये सब हर्ष के साथ प्रतीक्षा करते थे और पहले मारे जाने के लिये एक दूसरे से लड़–लड़ पड़ता था।

जल्लाद से हर एक सिख कहता, 'अरे ओ मुक्तिदाता, पहले मुझको मार!'

वहीं सिकलीगर अपनी सान पर जल्लादों की तलवारों पर धार तेज़ करता जाता था और वे सिख उसको देख-देखकर हँसते थे! मानो कोई खिलौना हो! प्राण बख्शे जाने का उनको वचन दिया गया—मुसलमान हो जाने की शर्त, परन्तु उनमें से एक भी राज़ी न हुआ।

सन् १७१६ का चैत लगा ही था। वसन्त का मध्य था। दिन में धूप कुछ तेज़ हो गई थी, परन्तु रात को अभी जाड़े ने न छोड़ा था! उस भयङ्कर, अँधेरे, गन्दे बन्दीगृह में भी बसन्त के फूलों की कुछ सुगन्ध लुक छिप कर पहुँच रही थी। जिन सौ का सबेरे वध होना था वे उस थोड़ी-सी

सुगन्धि और मन के मद में मस्त थे। ऊँघते-ऊँघते सो जाते थे और किसी उन्माद में जाग पड़ते थे। कैदखाने के उस बीभत्स अन्धकार में भी उनको कोई उजाला अपना प्रकाश दिखलाई पड़ जाता था।

इनमें से एक चौदह वर्ष का बालक था। वह ऊँघते-ऊँघते मुस्कराया और मुस्कराते-मुस्कराते सो गया।

आधीरात के पहले क़ैदखाने के दरोग़ा ने उसको धीरे से जगाया।

बालक ने आँख मलने के पहले कहा, 'तैयार हूँ, ले चलो गुरू के पास।'

दरोगा धीरे से बोला, 'गुरू के पास नहीं,' माँ के पास। तुम्हारी माँ आई है। वह तुम्हारे लिये मिठाई लाई है, 'पेट भर कर खा लो।'

अब लड़के ने आँखों को और मींचा। अन्धकार में उसने देखने का प्रयत्न किया।

पूछा, 'माँ आई है! मेरी माँ?'

उत्तर मिला, 'हाँ, तुम्हारी माँ। मिठाई लाई है, उस ओर चलकर खाओ। यहां तुम्हारे साथी सो रहे हैं और अन्धेरा भी बहुत है। दुर्गन्ध अलग।'

बालक खड़ा हो गया।

उसने प्रश्न किया, 'तुम कौन हो?'

'दरोगा'

'मेरी माँ मुझ अकेले के लिये मिठाई लाई है?'

'हां,'

'और इन सब को आज खाने को कुछ भी नहीं मिला है!'

'इनसे कोई मतलब नहीं।'

'हूं,'

लड़का बेखटके लेट गया।

बोला, 'कह देना माँ से कि सबेरे खाऊँगा मिठाई। अभी सोने से अवकाश नहीं है।'

दरोगा को क्रोध आया। उसके जी में आया इस अशिष्ट छोकरे को एक लात मार दूँ, परन्तु उसकी जेब गरम कर दी गई थी, इसलिये पैर नहीं उठा।

दरोगा ने कहा, ठीक भी है। जब जल्लाद की तलवार के घाट तुम्हारे ये सब साथी उतर जायें तब अकेले मैं पेट भर के खाना।'

दरोगा हँसा! लड़के ने करवट लेकर अनुरोध किया, 'हां हां उसी समय दिलवाइयेगा मिठाई, अभी तो सोने दीजिये। जाइये। जाइये।'

दरोगा चला गया।

सबेरे सौ क़ैदियों का वध होना था, परन्तु अभी जल्लाद की घड़ी नहीं आई थी।

एक स्त्री क़ैदखाने के बड़े फाटक पर आई। वह बगल में एक पोटली दाबे थी, जिसमें कुछ मिठाई थी। फाटक पर दरोगा मिला। दरोगा ने शिष्ट बर्ताव किया, क्योंकि उसकी जेब में स्वर्ण—खण्डों के अतिरिक्त कुतुबुलमुल्क वजीर का एक फरमान भी पहुँच चुका था। कुतुबुलमुल्क की जागीर का दीवान रतनचन्द नाम का एक हिन्दू था। यह स्त्री रतनचन्द की नातेदार थी और उसकी थराई विनती पर रतनचन्द ने वज़ीर से वह फरमान निकलवा लिया था। स्त्री ने उस फरमान को दरोगा के पास रात में ही भिजवा दिया था।

यह फरमान उस बालक की रिहाई का था और यह स्त्री उसकी माँ थी।

दरोगा ने कहा, 'रात को उसने खाने से इनकार कर दिया। चलो मैं उसको छोड़े देता हूँ। बाहर आकर खूब खिला-पिला लेना।'

स्त्री बोली, 'वह बिलकुल निर्दोष है। निरा बच्चा है। अभी उसके दूध के भी दांत नहीं गिरे हैं।'

हिंसा की प्रेरणा से दरोग़ा के मुँह से निकला, 'पर है वह बुरों की संगति में।' फिर अपने को नियन्त्रित करके बोला, 'जो कुछ भी हो, उसने इन लोगों की सुहबत में पाप किये हों या न किये हों, पर अब तो उसके छुटकारे का हुक्म ही हो गया है।'

'मेरा बच्चा बहुत सीधा है। वह किसी भी क्रूर काम को नहीं कर सकता। आपने तो देखा ही होगा—कितना भोला है, बात तक नहीं करना जानता।'

'ख़ैर, मुझको इन बातों से कोई निस्बत नहीं। पहले आंगन में चलो, मैं उसको छोड़े देता हूँ। अपने साथ लेती जाना।'

'बड़ी दया होगी। जल्दी कर दीजिये उसका छुटकारा। बहुत भूखा होगा। और फिर—और फिर—

'और फिर क्या?'

'और फिर जल्लाद आते होंगे। जब उसके साथी मारे जायंगे तब देखकर घबरा जायगा और सह न सकेगा। न जाने उस पर क्या प्रभाव पड़े। कहीं अचेत न हो जाय। पागल न हो जाय जल्दी कर दीजिये उद्धार उसका। मैं आपके हाथ जोड़ती हूं।'

दरोगा उस स्त्री को लेकर भीतर गया। जिन सौ वन्दियों का वध होना था उनमें काफ़ी चहल-पहल थी। विनोद-मग्न थे! हर्ष प्रमत्त!! मानो कोई मेला लग रहा हो!!! जैसे किसी बरात में जा रहे हों!!!!

दरोग़ा लड़के को क़ैदखाने के दूसरे आंगन में ले आया। वहीं उसने उस स्त्री को बुला लिया। वह स्त्री उसके पीछे आकर खड़ी हो गई। मुँह पर घूँघट था।

दरोग़ा ने जेब से फरमान निकाल कर लड़के से कहा, 'तुम्हारी रिहाई का हुक्म आ गया है।'

लड़का सुन्दर था। उसकी काली आँखों में प्रकाश था। मुँह कुछ सूखा हुआ, क्योंकि पिछले दिन सिवाय पानी के उसको कुछ न मिला था।

आँखों के प्रकाश में पागलों जैसा उल्लास था। लड़का ठठोली के स्वर में बोला, 'रिहाई का हुक्म काग़ज़ पर ! या तलवार की धार पर !!'

दरोग़ा ने कहा, 'तलवार की धार पर तो मलिकुलमौत (यमराज) का हुक्म लिखा है जिसको लेकर जल्लाद तुम्हारे साथियों की रूह के छुटकारे के लिये आयगा। तुमको वज़ीरुलमुल्क ने छोड़ दिया है। जाओ इस औरत के साथ।'

लड़का छाती पर हाथ कस कर बोला, 'यह स्त्री कौन है ?'

स्त्री ने घूँघट उघाड़ा। लड़के ने उस को देखकर एक उठी हुई आह को दबाया, और मुँह फेर लिया।

स्त्री ने कहा, 'तुम्हारी विधवा माँ मेरे लाल।'

लड़के का चेहरा तमतमा गया! उसने स्त्री से आँख मिलाई। गले में आई हुई किसी अटक को दूर किया और बहुत धीमे स्वर में बोला, 'तुम मेरी कोई नहीं हो।'

फिर कड़क कर दरोग़ा से कहा, 'ले जाओ इसको यहाँ से। यह मेरी माँ नहीं है। मेरी माँ होती तो मुझे स्वर्ग जाने की असीस देती न कि प्राण बचाने के लिये ऐरों-ग़ैरों से भीख मांगती फिरती। ले जाओ इसको यहां से, और बुलालो जल्लाद को जिसकी तलवार की धार पर स्वर्ग का सन्देश लिखा है।'

स्त्री काँप गई। उसकी आँखों से आँसू झड़ पड़े और गला रुद्ध हो गया। लड़का आँसू न देख सका। उसने पीठ फेर ली।

दरोग़ा की आंखें क्रोध से जल उठीं। स्त्री अचेत होकर भरभरा पड़ी लड़का भीतरी क़ैदखाने में चला गया। क़ैदखाने में घसने के पहले वह एक बार मुड़ा। उसकी आँख के एक कोने में एक मोती-सा झलक आया था। दो तीन उंगलियों से उसको तोड़ लिया फिर भीतर चला गया। कुछ उदास।

परन्तु जब जल्लाद की तलवार उसकी नन्हीं-सी गर्दन पर पड़ी तब वह हँस रहा था और उसकी आखें आकाश में किसी को देख रही थीं ?

महज़ एक मामूली सवार

(१)

सन् १७३८ के जाड़े की बात है निजामुलमुल्क और बाजीराव पेशवाका मालवा में युद्ध हो रहा था।

छुट पुट संघर्ष, आक्रमण, प्रत्याक्रमण, तलवारबाजी और गोलाबारी होने के बाद एक दिन भोपाल के पड़ोस में जहा निजामुलमुल्क पचास हजार से ऊपर सेना मराठों के मुक़ाबले में लिये पड़ा हुआ था बाजीराव की सेना ने चारों ओर से घेर लिया। दाना पानी लगभग सब बन्द। कहीं से भी सहायता या कुमुककी कोई आशा नहीं।

निदान बाजीराव से संधि कर लेने का निश्चय निजामुलमुल्क ने किया।

लेकिन—बाजीराव से खुद मिलना पड़ेगा। एलचियों से काम नहीं चलेगा। मगर यह भला आदमी है किस क़ियाश का ?

(२)

निजाम ने एक कुशल और विख्यात चित्रकार को बुलाया। 'पूछा क्या मराठों की छावनी में किसी तरह दाख़िल हो सकते हो ?

चित्रकार घबराया—'हुजूर' मराठों की छावनी में ! मैं न तो सिपाही हूं और न जासूस। घुस भी जाऊँ तो करूँगा क्या ?

निजाम ने पुचकार कर कहा लड़ाई या जासूसी के लिये नहीं जाना होगा अपने ही काम के लिये तो जाना है।

अपने ही काम के लिये ! कैसा हुजूर ?

घबराओ मत ! बाजीराव पेशवा किस हुलिया का आदमी है, उसकी रहन-सहन क्या है, मैं यह जानना चाहता हूं ! तुम उनको जिस ढङ्ग में सबसे पहले देखो उसकी नज़री तस्वीर जैसी तुम सही से सही बना सको बना लाओ ।

'हुज़ूर यह तो आपकी दुआ से कुछ भी मुश्किल काम नहीं, प्रसन्न होकर चित्रकार ने कहा—अभी जाता हूँ और इन्शा अल्लाह बहुत जल्द कामयाबी के साथ लौटूँगा ।

(३)

साधारण घुड़सवार । घोड़े की अगाड़ी पछाड़ी के रस्से एक झोले में बांधे था । कन्धे से लम्बा भाला टिकाये था । घोड़े का जीन सादा, पोशाक भी सीधी सादी । केवल साफे पर एक विशेष चिन्ह था । बस...

और ज्वार के अधपक्के भुट्टे को दोनों हाथों की गदेली से मीड़कर चबा रहा था ।

यह था बाजीराव पन्त प्रधान । जिसने तूफान से बाजी लगाकर तीस मील रोज की यात्रा करके बुन्देलखण्ड से दिल्ली पर छापा मारा था । यही बाजीराव है जिसके नाम से मालवा भर कांप रहा है ! पूना सतारा के महाराज का पेशवा यह है !! हिन्दुओं का नेता !!!

(४)

निज़ाम चित्र को देखकर आश्चर्य में डूब गया । यह बाजीराव की तस्वीर है ?—निज़ाम से न रहा गया ।

चित्रकार की क़लम और कूंची की कुशलता प्रसिद्ध थी और उसकी आंख की बारीकी भी ।

चित्रकार ने विश्वास दिलाया ।

निज़ाम ने धीरे-धीरे कहा—चेहरा मोहरा बांके खूबसूरत ज़वान का है। देह गठी हुई है, क़द जरा छोटा। मगर यह भुट्टा चबा रहा है! ज्वार का भुट्टा!! जिसकी बू तक से हमारे खवासों को ज़ुकाम हो जाता है!!! चित्रकार ने दृढ़ता के साथ कहा—हुजूर वह ज्वार का भुट्टा ही चबा रहे थे। जरा भी शक़ नहीं। ठीक उसी तरह जैसे उनकी फौज़ के छोटे से छोटे सिपाही चबाते हैं।

निज़ाम के मुंह से निकल पड़ा—

पन्त प्रधान पेशवा, महज़ एक मामूली सवार! मन में कहा—मगर सुलह की बात चीत के वक्त विकट आसामी निकलेगा वह!

तोषी

अपनी गाय के लिये तोषी खेत में से हरियाली ले रही थी। उसके दोनों बच्चे खेत के छोटे छोटे ढेलों के साथ खेल रहे थे।

गांव मे कुछ दूरी पर यकायक हल्ला सुनाई पड़ा। तोषी ने झटपट हरियाली को एक कपड़े में बांध कर सिर पर रक्खा। एक बच्चे को बगल में लिया और दूसरे को हाथ से पकड़ कर जल्दी जल्दी घर की ओर चली। बच्चा मिट्टी का ढेला हाथ में लिये बिसूरता हुआ किसी तरह मां का साथ देने लगा।

लायलपुर जिले के मझना गांव में हिन्दू-अहिन्दू, हिन्दू, सिख, मुसलमान और थोड़े से ईसाई—लगभग बराबर थे। किसान मजदूरों का गाँव था। कोई साम्प्रदायिक झगड़ा कभी नहीं हुआ था। इधर-उधर दगों-फसादों की आग लग चुकी थी, परन्तु मझना वाले अपने को सुरक्षित समझते थे।

गांव पहुँचते-पहुँचते तोषी ने देखा कि मझना वालों का विश्वास ग़लत हो गया है। बाहर के मुसलमानों ने मझना पर आक्रमण कर दिया। उनके साथ पुलिस और सेना के भी कुछ सिपाही थे।

पहले तो गाँव के मुसलमानों ने प्रतिवाद किया, परन्तु पीछे दब गये और बहुत से आक्रमणकारियों में शामिल हो गये। तोषी ने किवाड़ बन्द करके सांकल चढ़ा ली और दोनों बच्चों को समेट कर एक कोने में जा बैठी। एक लड़का और दूसरी लड़की। लड़का सात वर्ष का, लड़की चार की। घर में बूढ़ा ससुर, जो ज्वर के कारण चारपाई से लगा हुआ

था। हल्ले को सुनकर बूढ़े को भी मालूम हो गया कि क्या हो रहा है। बूढ़े ने दांत पीसे।

बोला—'न हुये मेरे बेटे घर पर नहीं तो बदमाशों को मजा चखा देते।'

तोषी ने भगवान को सुमरते हुये सोचा, 'अच्छा हुआ घर पर नहीं हैं। भगवान उनको सुखी बनाये रहें।'

तोषी का पति नन्दलाल दिल्ली के एक कारखाने में नौकर था और नन्दलाल का बड़ा भाई जियाराम नागपुर के बढ़ईखाने में मिस्त्री था।

(२)

तोषी के घर की भी बारी आई। किवाड़ फाड़ने में देर लगती देख कर आक्रमणकारियों ने घर में आग लगा दी। तोषी दोनों बच्चों को बग़ल में दाब कर किवाड़ों के पास आ गई। उसने विनती की परन्तु आक्रमणकारियों ने न माना। तोषी ने किवाड़ खोल दिये। लुटेरे भीतर घुस पड़े। बुड्ढे को मार डाला। जो कुछ घर में था ले लिया। गाय को पकड़ कर बाहर घसीट ले गये।

तोषी ने अपने और अपने बच्चों के लिये दया की भीख माँगी। उसकी आयु पच्चीस–छब्बीस साल की थी। रूप साधारण, परन्तु थी तो स्त्री। लुटेरों ने उसकी और उसके बच्चों की जान नहीं ली। उन्होंने उसको एक जगह घेर कर बिठला लिया। बच्चे उसके पास थे। रो-रो कर दम सी तोड़ रहे थे। तोषी की आँखें खुली थीं, परन्तु उसको दिखलाई कुछ भी नहीं पड़ रहा था; दिखलाई भी पड़ता था तो मानो समझ में कुछ नहीं आ रहा था। बच्चों का रोना कलपना, उसको झटके से दे देता था, उस समय कुछ कुछ समझ में आता था कि क्या हो रहा है या क्या होने वाला है।

गाव को राख करने के उपरान्त लुटेरे चल दिये। तोषी और उसके बच्चों को भी ले गये। कुछ हिन्दू स्त्रियों के साथ भी उन्होंने यही सलूक किया, परन्तु वे स्त्रियां तोषी के सामने न थीं।

उसी दिन संध्या के पहले वे लोग भूखी प्यासी तोषी को एक मसजिद में ले गये। पेश इमाम के सामने तोषी और उसके बच्चों को खड़ा कर दिया गया।

बग़ल में खड़े हुये किसी ने तोषी से कहा—'तुमको मुसलमान होना पड़ेगा। इनकार करोगी तो बुरी तरह मारी जाओगी।'

'मैं मुसलमान नहीं होऊंगी', सिसकती हुई तोषी बोली।

'तब मरो।'

'तैयार हूँ। मार डालो।' तोषी ने इधर-उधर देखा। मसजिद के अहाते में पास ही कुआं भी था। तोषी ने सोचा, 'दौड़ कर इसमें कूदती हूं और अपनी इज्जत बचाती हूँ।'

जो आदमी उनके पास खड़ा था वह शायद समझ गया। पास खड़े हुये बच्चों की ओर संकेत करके उसने ठोकर सी दी।

'ये बच्चे तुम्हारे ही हैं?'

बच्चों से लिपट कर तोषी ने फटे हुये गले से उत्तर दिया—'हाँ जी, मेरे ही हैं।'

'ये पहले मारे जायंगे। तब तुम्हारी बारी आवेगी।'

'मैं इनको नहीं मरने दूंगी। मेरे चाहे टुकड़े टुकड़े कर डालो।'

'इनको बचाना चाहती हो तो इसलाम कबूल करो।'

कुएं पर से आँख उठाकर तोषी ने पेश इमाम को देखा। बहुत धीमे स्वर में तोषी के गले से प्रश्न फूटा।

'आप कौन हैं? आप बड़े हैं—क्या मुझको न बचायेंगे?'

रूखे स्वर में पेश इमाम ने उत्तर दिया—'इसलाम क़बूल करने से बच जाओगी। तुम्हारे बच्चे भी बच जायेंगे।'

बच्चे प्यासे थे। पानी के लिये त्राहि त्राहि करने लगे। तोषी की सूखी और सूजी हुई आंखों में बिजली सी कौंधी। उसके ओठ फड़के।

परन्तु वह बिजली और वह फड़क वहीं लीन भी हो गई। उसने बच्चों की ओर देखा। सिर नीचा पड़ गया और आखे मुंद गईं।

टूटे हुये स्वर में बोली—'मैं इसलाम को कबूल करूँगी।'

इमाम ने पूछा—'तुम्हारा नाम ?'

उत्तर मिला—'तोषी बाई।'

कलमा पढ़ने के बाद तोषी को बतलाया गया कि उसका नाम रहीमन हो गया।

बच्चे शहरी कानून के अनुसार स्वतः मुसलमान हो गये। निकाह के लिये उससे कुछ नहीं पूछा गया। निकट ही जो गुण्डा खड़ा हुआ था उसके साथ तोषी–रहीमन का निकाह कर दिया गया और वह उसके साथ करदी गई।

तोषी ने कई बार आत्मघात का निश्चय किया, परन्तु बच्चों की मोहिनी ने वर्जित कर दिया।

पन्द्रह दिन बाद उस गुण्डे ने तोषी को तलाक दे दिया।

तीन बार 'मैंने छोड़ा' कह देने से गुण्डे को छुट्टी मिल गई। गुण्डे ने कुछ रुपयों में तोषी को दूसरे गुन्डे के हाथ बेच दिया। उसका फिर निकाह हुआ। तोषी ने फिर मरने की ठानी, परन्तु बच्चों को वह किसके हाथ छोड़ जाती ? निश्चय को पूरा न कर सकी।

इस गुंडे ने एक ही सप्ताह में तलाक दे दी। तीसरे निकाह की तैयारी हुई। तब तोषी ने सोचा—'ऐसे बच्चों का क्या करूँगी जिनके लिये इतनी दुर्गति सहनी पड़े ?' उसने बचों को मार कर मर जाने का निर्णय किया। अवसर खोजने लगी।

(३)

पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी सरकार में एक समझौता हुआ। दोनों सरकारों की सेनायें अपने अपने निष्क्रमणार्थियों को अपने अपने पहरों में ले जायं और भगाई हुई स्त्रियों तथा बच्चों को भी अपनी रक्षा में ले लें।

हिन्दुस्तानी पुलिस और सेना ने इस समझौते के अपने भाग को पूरी तरह निभाने की चेष्टा की, पाकिस्तानी पुलिस और सेना ने पैंतरों से काम लिया—अर्थात् जिन स्त्रियों को निकम्मा या व्यर्थ समझा उनको हिन्दुस्तानी सरकार के हवाले कर देने में ही अपनी जिम्मेदारी को पूरा करना काफ़ी माना।

नन्दलाल को अपने घर का कोई समाचार नहीं मिला। समझा सब समाप्त हो गया। समाचार पाने का कोई साधन था भी नहीं। नागपुर से उसके भाई जियाराम के तार पर तार आये—मानो नागपुर की अपेक्षा दिल्ली लायलपुर के अधिक निकट होने के कारण लायलपुर के समाचार पाने के विषय में अधिक सौभाग्यशाली हो। समाचार न मिलने पर भी दोनो भाइयों को एक पीड़ापूर्ण विश्वास था—बूढ़ा बाप मारा गया, घर बार लुट गया और स्त्री तथा बच्चे कहीं क़ैद में हैं!

परन्तु पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच के समझौते की बात समाचार-पत्रों में पढ़कर दोनों भाइयों के हृदय में आशा का संचार हुआ, शायद बच्चे मिल जायं; और स्त्री भी। नन्दलाल के जी को स्त्री की बात सोचते ही ठेस लगी। यदि स्त्री मेरी काम की न रही तो?

उसी समय नन्दलाल को अपने बड़े भाई जियाराम का पत्र मिला। उसमें लिखा था—

'मुझको आशा है कि तोषी और बच्चे मिल जायंगे। यदि तोषी के साथ कोई जबरदस्ती की गई हो, यदि उसको मुसलमान बना लिया गया हो तो भी, मिलने पर उसको तुरन्त ग्रहण कर लेना। वह गंगा के समान पवित्र है। हमको देह की बुराई भलाई से कोई प्रयोजन नहीं। यदि उसकी आत्मा को कलंक नहीं लगा है तो उसको देवी की तरह अपना कर पूरे आदर के साथ घर में ले लेना। मैं उसका छुआ हुआ ही नहीं, उसका जूठन तक खाने को तैयार रहूँगा। मुझको तार देना। मैं तुरन्त नागपुर से आ जाऊंगा।'

नन्दलाल को अपने बड़े भाई की बात समझ में आ गई। उसने सोचा, 'यदि अन्य हिन्दू मेरा तिरस्कार करेंगे तो देवतुल्य मेरे बड़े भाई तो मेरे साथ हैं।'

(४)

हिन्दुस्तानी सेना का दस्ता पाकिस्तानी पुलिस के साथ उस गांव में पहुँचा जहां तोषी—या रहीमन—अपने बच्चों के साथ थी। उस दिन वह अपने बच्चों को समाप्त करने का अवसर ढूंढ़ने में व्यस्त थी। वह नहीं चाहती थी कि अब किसी के लिये भी और अधिक दुर्दशा को सहे।

हिन्दुस्तानी सेना के दस्ते का आना उसको मालूम हो गया। जिस गुण्डे के पास वह इस समय थी, वह उससे पीछा छुटाना चाहता था। उस गुण्डे के वर्ग वालों के मन में तोषी के प्रति किसी प्रकार का मोह न था। पाकिस्तानी पुलिस कुछ 'कारगुजारी' दिखलाना चाहती थी। इसलिये तोषी का पता अविलम्ब लग गया।

तोषी से पूछताछ की गई।

'तुम हिन्दुस्तान जाना चाहती हो?'

'क्यों? मैं वहा क्या करूंगी?'

'अपने भाई बन्दों में जाओ, अपने समाज में शामिल हो जाओ।'

'मेरा हिन्दुस्तान में कोई नहीं है। संसार में मेरा कोई समाज नहीं।'

'तुमको यहां से जबरदस्ती नहीं हटाया जायगा। तुम खुशी से जाना चाहो तो जा सकती हो। आराम के साथ अमृतसर, गुरुदासपुर या दिल्ली जहां जाना चाहो भेज दिया जायगा।'

'दिल्ली! नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। मैं तो मरना चाहती हूँ। आज ही मरूंगी।'

परन्तु वे दोनों बच्चे वहीं खड़े थे।

हिन्दुस्तानी दस्ते के कमांडर की समझ में आ गया। बोला,—'बाई तुम्हारी बात को समझता हूँ। इन बच्चों के लिये जीती रही हो तो थोड़ा और जियो। तुम्हारा समाज इतना दुष्ट और निठुर नहीं है जितना तुम

समझती हो। तुमको बांहें फैलाकर ले लिया जायगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम लोगों के साथ चलो। हम तुम्हारे भाई हैं।'

तोपी ने कहा—'मेरे हाथ का छुआ खा लोगे? मैं मुसलमान बना ली गई हूँ।'

'बेशक खा लूँगा।' हिन्दू कमांडर ने आश्वासन दिया, 'तुम्हारा जूठा पानी तक पी लूंगा। करके देख लो।'

तोषी ने बच्चों की ओर देखा। वह फूट फूट कर रोई। उसका निश्चय पिघल कर बह गया। वह हिन्दुस्तानी दस्ते के साथ होली।

परन्तु उसको विश्वास न था।

हिन्दू कमांडर ने तोपी के हाथ का पकाया हुआ खाना खाया। बच्चे हफ्तों के बाद आज प्रसन्न थे और मिट्टी के ढेलों से खेल रहे थे। हिन्दू कमांडर आत्माभिमान के मारे फूला न समाता था। परन्तु तोपी के आंसू नहीं रुक रहे थे। समझाता बुझाता हुआ वह कमांडर उसको हिन्दुस्तान के पहले शरणार्थी शिविर में ले आया। वहां से नन्दलाल के पास दिल्ली तार गया, क्योंकि तोपी ने स्वयं दिल्ली जाने से इनकार कर दिया था।

नन्दलाल तार पा कर आ गया।

नन्दलाल ने तार द्वारा अपने बड़े भाई जियाराम को नागपुर से बुला लिया। जब नन्दलाल तोपी को अपने बच्चों सहित दिल्ली लाया तब जियाराम नागपुर से आ चुका था। वह अगवानी के लिये दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर गया।'

जब वे सब मिले, तब उनके आंसुओं का अन्त होता नहीं दिखता था।

जियाराम ने तोपी से कहा—'बेटी, तुम गंगा की तरह पवित्र हो। जैसे राम अनन्त हैं उसी तरह गंगा की पवित्रता भी अनन्त है।

उन आंसुओं ने और उस वाणी ने दिल्ली स्टेशन के अनेक हिन्दुओं को पवित्र किया।

क्या हिन्दू समाज भर की कालिमा उन आंसुओं ने थोड़ी सी भी न धोई होगी?

सुअर

उतरती बरसात के दिन थे। सूर्यास्त होने में विलम्ब था। बदली छाई हुई थी और ठन्डी हवा चल रही थी। मैं अपने एक मित्र के साथ जङ्गल की ओर चल दिया। जङ्गल में घुसा नहीं था कि दो छोकरे दो कुत्ते लिये हुये मिल गये। कुत्ते आगे-आगे दौड़ रहे थे और कलोलों पर थे। मैंने उन छोकरों को कुत्ते पकड़कर लौटाने के लिये कहा। उन्होंने प्रयत्न करके एक कुत्ता पकड़ पाया, दूसरा जङ्गल का रुख पकड़ गया।

हम लोग उस कुत्ते को पकड़ने की चिन्ता में जङ्गल के सिरे पर पहुँच गये। झाड़ी शुरू हो गई थी, परन्तु घनी न थी। निदान वह कुत्ता एक छोटी-सी झाड़ी के पास जा ठिठका। हम लोग उसके पास पहुँच गये मेरे सामने वह झाड़ी थी। दाईं ओर चार-पाँच कदम के अन्तर पर मेरे मित्र दुनाली बन्दूक लिये खड़े हो गये। एक कुत्ते को एक छोकरा साफे के छोर से बांधे हुये बाईं ओर चार-पांच क़दम के फासले पर और दूसरा उसके बराबर खड़ा हो गया। मेरे मित्र दाईं ओर से हटकर और सामने आये।

उस दूसरे आवारा कुत्ते ने झाड़ी में मुंह डाला, सूंघा और फूं-फा की। मैंने समझा, खरहा-वरहा होगा। परन्तु उस झाड़ी में से कूदकर निकला एक मझोला सुअर। वह सीधा मेरे ऊपर आया। मैं तीस बोर राइफ़ल लिये था। भरी हुई थी, परन्तु नाल पर ताला पड़ा था। मेरे मित्र बन्दूक नहीं चला सकते थे। चलाने पर गोली या तो मुझ पर पड़ती, या

उन दो छोकरों में से एक पर। मैं भी नहीं चला सकता था। मेरी गोली या तो उन मित्र पर पड़ती, या किसी छोकरे पर।

उन दोनों छोकरों के मुँह से निकला—'ओ मताई खा लओ।' और वे बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के नितम्बों के बल धम्म से गिरे। उसी क्षण सुअर मेरे ऊपर आया।

क्षण के एक खण्ड में ही मैं समझ गया कि आज हड्डी-पसली टूटी। और तो कुछ कर नहीं सकता था, मैंने सुअर के आक्रमण को बन्दूक की नाल पर झेला। कन्धों और हाथों को काफी कड़ा करके मैंने सुअर के आक्रमण को झेला था। परन्तु उसने मेरी दाहिनी टांग को दो झिट्टे दे ही तो दिये। ये झिट्टे घुटने के नीचे पड़े थे।

सुअर अपना यह थोड़ा सा परिचय देकर भागा और मैंने अपना परिचय देने के लिये उसको पछियाया परन्तु मैं दस-पन्द्रह डग से आगे न जा सका। पैर भारी हो गया और जूतों में खून भर गया। खिसियाकर रह जाना पड़ा। परन्तु विपद यहीं समाप्त नहीं हुई।

इस स्थान से बेतवा का किनारा लगभग एक मील था। हम लोगों ने उस रात नदी के एक बीहड़ घाट पर ठहरने की सोची थी। पैर में गर्मी थी, इसलिये घाट पर पहुँचने में कोई बाधा नहीं जान पड़ी। घाट पर पहुँचे तो देखा कि यहा बिस्तर-बिस्तर कुछ नहीं। जिस गांव में डेरा डालाथा, वह इस घाट से लगभग ढाई मील था। परन्तु ऊपर की ओर हम लोगों ने, बेतवा कोठी में, एक ठिया और बना रक्खा था। सोचा, शायद बिस्तर वहां रख दिए गए होंगे। अभी अँधेरा नहीं हुआ था, इसलिए हम लोग उस ठिए की ओर चल पड़े। वह इस घाट से डेढ़ मील की दूरी पर था। पैर लँगड़ाने लगा था, परन्तु मन को आशा में उलझाए हुए वहां पहुँच गया। देखा तो बिस्तर वहां भी नहीं। घाट पर बिस्तर रखने के लिए जो शिकारी नियुक्त था, वह या तो भूल गया था या भ्रम में था—शायद हम लोग गांव को लौट आवें, क्योंकि सुअर की टक्कर का समाचार गांव में पहुँच गया था।

मेरा पैर सूज गया था और घाव में काफी पीड़ा थी । घाट पर बिना बिस्तरों के ठहर नहीं सकते थे । मेरे मित्र चिन्तित थे। बोले—'आप गड्ढे में बैठिए, मैं गांव से बिस्तर और भोजन लाता हूँ।'

गांव इस ठिए-'गड्ढे'-से दो मील था। मैंने कहा—'न । मैं भी चलता हूं। घाव को गरम पानी से धोकर प्याज का सेंक करेंगे।'

हम दोनों गांव की ओर चल दिये। मैं कभी मित्र का और कभी बन्दूक का सहारा लेता हुआ गांव में नौ दस बजे तक पहुँच गया। रात को घी में भूने हुये प्याज का सेंक किया। कुछ दिनों में घाव अच्छा हो गया उसमें पीव नहीं पड़ी। परन्तु उसके थोड़े से निशान अब भी मौजूद हैं। सुअर का चोट का घाव विषैला नहीं होता है। गांव वालों ने यह बात मुझको उसी रात बतलाई थी। परन्तु शिकार में ऐसी चोटों का लग जाना साधारण बात है।

सुअर के शिकार के लोभ में एक बार ज़रा कड़ी चोट खाई थी। अगोट पर बैठे-बैठे जब थक गया, गाव को लौटा। साथ में गाव का पथ-प्रदर्शक था। रात काली अँधेरी थी और मार्ग जङ्गली पगडंडी का।

पथ-प्रदर्शक ज़रा आगे निकल गया। पगडंडी एक जगह बन्द-सी जान पड़ी। मैं समझा, आगे दूबा है और वह उसी में लुप्त हो गई है। पर वह निकला एक भरका। लगभग चौदह फीट गहरा। मैं धड़ाम से उसमें गिरा। बन्दूक हाथ में लिये था। इसके बल जा सधा, नहीं तो हाथ टूट ही जाता—दाहिना हाथ जिससे लिखना सीखा था। हाथ तो बच गया, परन्तु जबड़े का धक्का कान पर लगा। वह एक कष्टदायक फोड़े के रूप में परिवर्तित हो गया। सात महीने के लिये काम और शिकार, दोनों छोड़ने पड़े। इसमें से दो महीने चीर-फाड़ के सिलसिले में लखनऊ में बिताये।

जब स्वस्थ हो गया, तब सुअर फिर ध्यान में आया। सुअर का शिकार जितना 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' है, उतना ही मनोरंजक और सन-सनी देने वाला भी होता है। उस के शिकार का संकट ही कदाचित् मन

को बढ़ावा देता है। मैंने सुअर के सताए बहुत से लोगों को देखा है। किसी की जांघ फाड़ डाली गई थी। किसी का हाथ तोड़ दिया गया था और किसी की आंतें बाहर निकाल दी गई थीं। कई तो मर भी चुके थे। बेचारा मंटोला तो फटी जांघों का इलाज कराने के लिए तीन महीने अस्पताल में रहा था।

गांव के लोग सुअर की सीध और उसके संकट को जानते हैं, इसी–लिए उससे बहुत सावधान रहते हैं। ज्वार के खेत में जब अकेला सुअर आता है, तब वह रखवाले की ललकार का उत्तर ढिठाई के साथ उस के पास आकर देता है। रखवाला उस के ऊपर जलते हुए कंडे और सुलगते हुए लक्कड़ फेंककर भागते–भागते जान छुड़ाता है।

खेती को नुक़सान पहुँचाने वाले जानवरों में चीतल और हिरन से कहीं आगे है सुअर। मनुष्यों के शरीर को चीरने-फाड़ने में वह तेंदुओं से कम नहीं है। सुअर की खीसों से मारे जाने वालों की संख्या तेंदुए की दाढ़ों और नाखूनों से मारे जाने वालों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। सुअरों की संख्या इतनी शीघ्रता के साथ बढ़ती है कि उसकी बाढ़ में किसी बड़े षडयन्त्र का हाथ-सा दिखलाई पड़ता है। दो-तीन वर्षों में ही एक जोड़ से कम-से-कम पचास जोड़ हो जाने की संभावना रहती है। यह जानवर बहुत दृढ़, बड़ा कष्ट–सहिष्णु, विकट बहुभोजी और बहुत मार पी जानेवाला होता है। बहादुर इतना कि इसके मुक़ाबले में शेर की कोई गिनती नहीं।

खीसें इसका हथियार होती हैं, और बल का कोष इसकी गर्दन और कन्धे; और इसका सिर तो मानो पत्थर का एक ढोंका ही होता है। जिसने एक बार इस खीस या सिर की टक्कर खाई, वह उसको कभी नहीं भूल सकता, बशर्ते कि उस टक्कर के कारण मर न गया हो।

जब सनसनाती हुई दोपहरी में, मैं एक ग्रामीण के साथ पहाड़ पर चढ़ते–चढ़ते एक सुअर को पड़ा पा गया तब ग्रामीण घबराकर पेड़पर चढ़ गया। मैंने बन्दूक़ चलाई। सुअर लुढ़कता–पुड़कता पहाड़ के नीचे गया,

परन्तु एक जगह सहारा पाकर ठहर गया और फिर मुझसे बदला लेने के लिये पहाड़ पर चढ़ा—इतना घायल होते हुये भी! परन्तु मेरे पास राइफल थी और कारतूस। उसको मार खाकर फिर वापस जाना पड़ा।

एक बार तो सुअर घायल होकर लगभग सौ गज से, मेरे ऊपर दौड़ आया था।

करामत मियाँ को हिरन का शिकार खेलते-खेलते सुअर मिल गया। बन्दूक कारतूसी तो थी, पर थी इकनाली। सुअर पर दाग दी। सुअर घायल हुआ और आया करामत के ऊपर। मियाँ को बन्दूक फेकऱ एक पेड़ का सहारा पकड़ना पड़ा, तब प्राण बचे।

एक ठाकुर की तो गड्ढे में लाश ही पड़ी मिली थी। थोड़ी दूर पर सुअर भी मरा मिला। ठाकुर रात के पहले ही, कांटेदार गड्ढे में जा बैठा। बन्दूक टोपीदार थी। निशाना जोड़ पर नहीं बैठा। लोगों ने बन्दूक चलने की आवाज सुनी। सवेरे गड्ढे के भीतर ठाकुर को जगह जगह फटा हुआ पाया और सुअर के खुरखुन्द के चिन्ह।

घायल सुअर का पीछा शिकारी कुत्ते बहुत अच्छा करते हैं। एक डांग में मेरे एक साथी ने सुअर को घायल किया। उसके पास कुत्ते थे तो छोटे छोटे, पर वे थे सीखे हुये। उसने घायल सुअर के ऊपर कुत्तों को छोड़ा। कुत्तों ने लगभग आध मील पछियाकर सुअर को जा पकड़ा।

मैं भी दौड़ता-दौड़ता पीछे गया। जब निकट पहुँचा तो देखा कि कुछ कुत्ते उसकी पूँछ पकड़े हुये हैं, कुछ दोनों तरफ़ से उसके पेट से चिपटे हैं और एक कान पकड़े हुये उसकी पीठ पर जमा हुआ है। वे सब एक झोर में थे। मैं झोर में उतरा। साथी ने मना किया—'उसके पास मत जाओ। बहुत क्रोध में है। टुकड़े टुकड़े कर देगा।'

मैं न माना। तीस बोर राइफल हाथ में जो थी! मैं आठ-दस क़दम के अन्तर पर जाकर खड़ा हो गया। सुअर की आंखों से आग बरस रही थी। बिलकुल लोहूलुहान था। सुअर ने एक 'हुई' करके मेरी ओर झपट

लगाने का प्रयास किया। परन्तु आधे दर्जन से ज्यादा कुत्ते उस पर चिपटे हुये थे। वह आगे न बढ़ सका। मैंने भी सोचा, इसको ज्यादा मौका न देना चाहिये। जैसे ही मैंने बन्दूक को कन्धे से जोड़ा और के ऊपर से मेरे साथी ने पुकार लगाई—'बन्दूक मत चलाना। कहीं किसी कुत्ते को गोली न लग जाय।'

मैं सुअर के दूसरे प्रयास की प्रतीक्षा नहीं कर सकता था और न वहां से हट ही सकता था। वहाँ पहुँचने से कुत्तों को ढाढस मिल गया था, मेरे हटने से शायद वे अनुत्साहित हो जाते अथवा सुअर कुत्तों से छूटकर मेरे ऊपर आ कूदता, तो निशाना बांधने का भी अवसर न मिलता। मैंने उसके सिर पर गोली छोड़ दी। सुअर तुरन्त समाप्त हो गया। परन्तु उसकी दूसरी ओर चिपका हुआ एक कुत्ता भी ढेर हो गया, क्योंकि गोली सुअर को फोड़कर निकल गई थी।

कुत्ते के मालिक से मैंने क्षमा मांग ली।

सुअर जिस प्रकार खेती का विनाश करता है, वह मैंने अपनी आंखों देखा है। वह सावधानी से ज्वार के खेत में घुसता है। अपने नीचे पेड़ को दबाता हुआ आगे बढ़ता है। पेड़ तड़ाक से टूटता है। भुट्टा उसके मुंह में आता है और एक भुट्टे से भूख को प्रज्वलित करके वह फिर आगे बढ़ता है। रखवाले की झंझट की आहट लेता है और फिर अपनी विनाशकारी क्रिया को जारी करता है। रखवाले ने हल्ला-गुल्ला किया, तो या तो उस पर दौड़ पड़ा, या उसी जगह घड़ी आध घड़ी के लिये चुप हो गया। सुविधा पाकर फिर वही सत्यानाश। जिस खेत में सुअरों का झुण्ड घुस जाय, उसमें सब चौपट ही हो जाता है।

चने, गेहूँ, मसूर इत्यादि के खेतों को तो वह ऐसा कर देता है, जैसे किसी ने घास-फूस के ढेर लगा दिये हों। किसान ढबुये में या आग के सहारे पड़े-पड़े रात भर चिल्लाते रहते हैं, तब कुछ बचा पाते हैं।

शकरकंद, ईख और आलू का तो वह ऐसा भक्षण करता है कि उसका पूरा बस चले, तो नाम-निशान तक न रहने दे। मेरी आलू की

खेती को तो उसने ऐसा नष्ट किया था कि एक सेर आलू भी खाने के लिये न छोड़े। कुछ दिन रखवाली करते-करवाते एक रात चूक हो गई। वही रात सुअर का अवसर बन गई। सबेरे जो खेत को देखा, तो ऐसा दृश्य जैसे किसी ने भोंड़ेपन के साथ हल चलाये हों!

मक्का के खेत को भी यह बिछाकर ही रहता है। यों तो चिड़ियां भी इसको चुगते-चुगते नहीं अघातीं; परन्तु सुअर के लिये तो यह मोह का जाल ही है। बहुत से लोगों ने सुअर के नाशकारी भय के मारे मक्का की खेती ही छोड़ दी है। मक्का की खेती करना मानो विपद को सिर पर बुलाना है। कई जगह ईख की भी खेती छोड़ दी गई है।

मनुष्य जाति के प्रारम्भिक विकास-काल में सुअर कितना भयंकर रहा होगा, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। मारे डर के इसको देव-दानव और अवतार तक की पदवी मिल गई है। अवतार का प्रयोग सुन्दर ढङ्ग से किया गया है, पर वह विकास के मध्य-भाग की बात रही होगी।

सुअर का शिकार घोड़े की सवारी पर, भालों से भी होता है और बहुत सनसनी देने वाला होता है। परन्तु भूमि पहाड़ी और बहुत ऊबड़-खाबड़ नहीं होनी चाहिये।

नैतिक स्तर

(१)

अहमदशाह अब्दाली के पास अन्न, धन और जन बराबर आते रहे। हिन्दू सेना के पास इन तीनों का आना निरन्तर कम होता चला गया। अब्दाली ने अपनी कुछ टुकड़ियों को चारों दिशाओं में फैला दिया जो भाऊ के शिविर में किसी प्रकार की भी सहायता का पहुँच पाना असम्भव कर रही थीं। जो मराठा दस्ते अन्न संग्रह के लिये इधर उधर फैले हुये थे वे घेर कर मार दिये गये। किसान परेशान हो गये थे। इसलिये उन्होंने मराठों की कोई सहायता नहीं की। इधर गोविन्द पन्त अपने साथियों सहित मारा गया, उधर पूना में पेशवा ने उसका घर द्वार जब्त कर लिया। अपराध उसका यह प्रगट किया गया था कि उत्तर की वसूली का कोई हिसाब नहीं दिया। इस बर्ताव के कारण कई सरदारों का मन टूटने लगा।

बड़ी कठिनाई से एक बार थोड़ा सा रुपया दिल्ली की ओर से आ पाया। फिर बिलकुल बन्द हो गया।

सबसे बड़ी समस्या सामने आई गोली बारूद की कमी की। अब्दाली को लगातार युद्ध सामग्री मिल रही थी, भाऊ की बिल्कुल बन्द होगई। इसी समय कुंजपुरा हाथ से निकल गया।

अफसरों की कमी हो गई। नई ताजी भर्ती बाहर से नहीं आई। पानीपत नगर की अधिकांश जन-संख्या अब्दाली के साथ सहानुभूति रखने वाले मुसलमानों की थी।

अन्न और चारा नाहक बराबर हो गया। एक रात में बीस हजार मज़दूर और सिपाही चारा और लकड़ी की खोज में शिविर के बाहर हो गए। अब्दाली के बड़े-बड़े दस्ते गश्त लगाते हुए आगये और उनको घेर लिया। लगभग सबके सब मारे गये, ठंड बहुत कड़ाके की। कपड़ों की कमी। भूखे सिपाही ठंड और बीमारी के कारण मरने लगे। मलमूत्र त्याग के लिए सिपाही खाइयों से बाहर नहीं निकल पा रहे थे। ईंधन मुर्दों के जलाने तक को न रहा। सड़ांदों के मारे नाकों दम आगई। पूना से अन्न धन कुछ न आया—इसी समय पेशवा ने एक ब्याह और किया। परन्तु वह यदि नई विवाहिता के मोद-प्रमोद में नहीं भी होता तो भी अन्न सहायता का भेजना उसके लिये असम्भव था। कठिनाई के साथ एक महीने में तो चिट्ठी ही पानीपत से पूना पहुँच सकती थी। एक-एक दिन असह्य हो रहा था।

अफगानों ने मराठा शिविर के भूले भटके मनुष्यों को बड़ी बर्बरता के साथ मारना शुरू कर दिया—जिसमें हिन्दुओं के मन पर आतंक बैठ जाय।

(२)

अब्दाली ने इब्राहीमखां गार्दी के पास एक पत्र भिजवाया। वह इब्राहीम को फोड़ लेना चाहता था। इब्राहीम ने उत्तर दे दिया पत्र और उत्तर शिविर में छिपे नहीं रहे।

माधव जी इब्राहीम के पास गये। कहा, 'खां साहब, मैं फिर भी कहूँगा अब्दाली है बड़ा चतुर। वह हर तरह की नीति को काम में ला रहा है।

वह बोला, 'मैं तो उसको एकदम मूर्ख समझता हूँ। उसने इतना न सोचा कि मैं हिन्दुस्थानी मुसलमान हूं, कोई लुटेरा पठान नहीं हूँ।

'लोभ तो उसने बहुतेरे दिये, मगर वाह गार्दी साहब!' 'मेरे दीन ने, मेरी आत्मा को जो कुछ दे रखा है उससे बढ़कर तो अब्दाली मुझको

कुछ दे नहीं सकता। और फिर सरदार साहब, मेरा मुल्क तो मेरी सब किसी चीज़ से बड़ा है।'

'सरदार मत कहिये जनरल साहब। मैं केवल पटेल हूँ।

'अच्छा—अच्छा! पर और लोग तो कहते हैं।'

'और लोगों को रोक नहीं पाता। मैं अपने को अपने साधारण भाइयों में ही गिनवाये रखना चाहता हूँ।'

मैं भी इसी ख्याल का हूँ। आपसे बातचीत हुई भी है।'

'मुल्क के लिये ऐसा विचार जैसा आपका है यदि हम सब का होता तो कैसी बड़ी बात होती।'

'पहले तो मेरा भी रोना धोना सा था। था जरूर, पर उभारा हुआ न था।'

आपने क्या जवाब दिया अब्दाली को? आप ही के मुँह से सुनना चाहता हूँ।'

'सीधा सा और छोटा सा—मैं अपने निमक, ईमान और मुल्क के खिलाफ नहीं लड़ सकता।'

'ऐसे भी जागीरदार और भूमि के भूखे हैं, हिन्दू और मुसलमान दोनों जो अब्दाली से मिले हुये हैं।'

'हिंदू कम, मुसलमान ज्यादा। इसका कारण है। ऐसे बहुत से मुसलमान हैं जिन्होंने इस मुल्क को अभी तक अपना नहीं समझा है और हिन्दुओं को काफिर, अपना दुश्मन, और उनकी जायदाद को अपनी लूट का हक माने बैठे हैं। इनका भी इतना क़सूर नहीं है, जितना हमारे मुल्क की जागीरदारी, जिमींदारी और मन्सूबदारी चलन का है। उखड़े हुये जिमींदार हमला करने वाले परदेशी दुश्मन से फौरन ही तो जा मिलते हैं। इनमें मुसलमानों की तादाद ज्यादा है।'

'नजीबखां के रुहेले इसी तरह के लोग हैं।'

'दक्षिण में ऐसा हिन्दू सरदार करते रहते हैं। आपने निजाम वाली लड़ाइयों में देखा ही है।'

'बेईमानों और देशघातियों की कोई अलग जाति नहीं होती। अपनी ही छावनी में बुड्ढा होलकर ऐसा है जिस पर मुझको सन्देह है, पटेलजी।'

'शायद आपका सन्देह गलत निकले, खाँ साहब। वह पुराना जाँचा हुआ आदमी है। बुड्ढा और निर्बल है, इसलिये शरीर और मन से अशक्त हो गया है वैसे पुराने ढंग की लड़ाई में उसकी बराबरी का कोई नहीं है। बोली अवश्य उसकी कड़ुवी है।'

'मैं उसके दिल की बाबत कह रहा हूँ। बोली तो बहुत से सिपाहियों की कड़ुवी होती है, हालांकि ऐसा नहीं होना चाहिये। मैंने ही एक बात अब्दाली को कड़ुवी लिखी है।'

'वह क्या खाँ साहब ?'

'मैंने उनको लिखा है—वह मुसलमान, मुसलमान कहलाने के ही लायक नहीं जो दूसरे मुसलमानों को बेईमानी करने या अपने मुल्क के खिलाफ कोशिश करने के लिये बरगलावे।'

'क्या आपका यह सिद्धांत हमारे इस प्यारे अभागे देश में हिन्दू और मुसलमान कभी अपनावेंगे ?'

'कोशिश कीजिये, पटेल साहब। आजकल के लिये कुछ नई सी बात है। आपसी लड़ाई झगड़े, लूटमार, स्वार्थ बहुत हैं। कुरबानी और त्याग के बदले में इनामों के लिये मुँह बाए खड़े रहना और उनके लिये लड़ लड़ मरना इतना बढ़ गया है कि यही नहीं मालूम पड़ता कि हम हिंदुस्थान में रहते हैं या किसी नरक में।'

'यदि हम लोग इस लड़ाई से बचकर निकल पाये, खां साहब, तो इस बुरे चलन को मिटाने के सभी उपाय करेंगे।'

'ज़रूर,' गार्दी ने कहा, 'मेरा बस चलेगा तो मैं सारी की सारी फौज और शासन को क़ायदे में बाँध दूँगा। मराठों की लुटेरा निगत और आदत को बन्द कर दूँगा। किसान और मजदूरों को हर तरह का आराम दूँगा। सबसे पहले तो उनकी बेगार बन्द करवा दूँगा। राज्य का पूरा रुपया सरकारी खजाने में दाखिल किया जाय और वहां से तनख्वाहों के रूप में लोगों को मिले। मैं एक बात और चाहता हूँ—हिन्दुओं में से छूत अछूत का सवाल हट जाय। मेरे सिपाहियों को आपके ज्यादातर लोग छूते नहीं। मेरी तिलंगा ब्रिगेड को इससे आराम भी है। कोई भी उनका कपड़ा-लत्ता और अनाज चुराने नहीं आता। लेकिन अपने साथियों को, जो मरने मारने में किसी से भी कम नहीं है और क़ायदे की पाबंदी में सब से बढ़कर, छोटा और नीचा समझा जाता है यह मुझको बहुत अखरता है। इस भेदभाव को दूर करने की बड़ी जरूरत है।'

माधव जी बोले, 'इसमें देर लगेगी जनरल साहब, बड़ा कठिन सवाल है।'

गार्दी ने टोका, 'कठिन तो सभी सवाल हैं। उस बूढ़े तोते मल्हारराव को कोई भी नया सबक़ सिखलाना क्या कुछ सहज है? मराठों का मन लूटमार की तरफ से मोड़कर क़ायदे की तरफ लाना क्या टेढ़ी खीर नहीं है? पर हम लोगों को हौसला रखना चाहिये। कहते हैं—

'हारिये न हिम्मत बिसारिये न रामनाम।'

'मैं नहीं भूलूंगा,' मुस्कराकर माधवजी ने कहा।

रक्त-दान

गत युद्ध (१६३६–४५) में गवर्नमेंट द्वारा किये गये सभी कार्य क्षोभ उत्पन्न करने वाले न थे–कुछ उपहासास्पद भी थे। उन में से एक था रक्त बैंक के लिए रक्त का संग्रह। उद्देश्य श्रेष्ठ था, परन्तु संचय का साधन बहुत बेढंगा।

(१)

कलक्टर अँगरेज़ था। दुनाली बन्दूक की तरह सीधा, परन्तु हल्ला करने के पहले खम खाजाने वाला। गवर्नमेंट का सर्क्यूलर आया—फौज के आहतों और बीमारों के लिये स्वस्थ लोगों का खून इकट्ठा करो। कलक्टर ने डिप्टी कलक्टरों को बुलाया, डिप्टी कलक्टरों ने तहसीलदारों को और तहसीलदारों ने नायब तहसीलदारों को। सुपरिनटेन्डेण्ट पुलिस को भी सूचना दी गयी। उसके सिलसिले ने दूसरा मार्ग पकड़ा। असिस्टैण्ट, डिप्टी तथा इन्सपेक्टरों और सब इंसपेक्टरों को कमानी हुक्म निकाला—खून देना होगा। अभी तक तो खून लेते थे, अब देना भी पड़ेगा। यह लड़ाई जो कुछ न कर दिखलाये सो थोड़ा! साहब की आज्ञा की अवज्ञा और मोटी तनख्वाह के प्रति लापरवाही सब एक साथ कैसे संभव था! डाक्टरी सार्टीफिकेट ने जिनके खून को अनुपयुक्त समझा उन्होंने चैन की सांस ली, बाक़ी का नाम सूची पर चढ़ा दिया गया।

इधर यह कुछ जल्दी हो गया, उधर तहसीलदार और नायब तहसीलदार सोच में पड़े थे कि कानूनगोओं और पटवारियों से क्यों न इस त्याग के काम में सहायता ली जावे? परन्तु इन लोगों की मार्फत विविध प्रकार

के चन्दे भी वसूल करने थे। किसान जमींदारों और ताल्लुकेदारों को नाना प्रकार के कर-टैक्स-बेगार देते आये हैं, परन्तु उन्होंने या उनके ज़मींदारों ताल्लुकेदारों ने लड़ाई के चन्दे को भस्मासुर का रूप धारण करते नहीं देखा था,—एक चन्दा खतम हुआ नहीं कि दूसरा सिर पर,—इसलिये तहसील के लोग अपने प्रबल बल में इतना प्रभाव महसूस नहीं कर पा रहे थे कि देहातों से खून भी इकट्ठा कर सकेंगे। अगर कहीं गाँव में समाचार फैल गया कि थैलियों के मुँह अभी रुपयों से नहीं भर पाये थे कि खून जमा करने के लिये अब अफ़सर लोग कलसे और लोटे लिये दौड़धूप करेंगे, तो गजब हो जायगा; रुपया तो और मिलना दुष्कर हो ही जायेगा, बलवे, दंगे, खून-खराबी और बढ़ जावेगी। इतने में सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस की सलाह से कलक्टर ने तै किया डिप्टी कलक्टर और तहसीलदार तथा शहर के स्वस्थ लोग खून देने वालों की फ़िहरिस्त में नाम लिखवावें गाँव वालों से रक्तदान के लिये हरगिज़ न कहा जावे। कहां की बला कहां नाज़िल हुई; परन्तु काले बादलों में एक रुपहली गोट भी लगी थी—शहर के स्वस्थ लोग-बाग।

शहर के स्वस्थ लोगों में क्या वे ही लोग नहीं हैं जो लैन दैन और चोर बाज़ार की खूराकों से मोटे पड़े थे? चन्दों और कर्ज़ों में रुपया देते रहने पर भी अभी कितना कम हुआ था?

कलक्टर को सलाह दी गई कि मीटिंग की जावे, शहर के रईस, भले आदमी, कुछ अच्छे वकील, माल दीवानी और फौज़दारी के अफसर उस मीटिंग में बुलाये जावें और उनको समझाया बुझाया जावे।

(२)

नियुक्त समय पर मीटिंग हुई। सभी सरकारी नौकर हाजिर हुये। दो बुड्ढे सेठ और एक वकील साहब सिर्फ़ ये गैर सरकारी लोगों में थे। उन सेठों में एक आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। वकील की कुर्सी इन सेठों के पास थी नाम नारायणप्रसाद मीटिंग की कारवाई शुरू होने के पहले

सिविलसर्जन भी आ गया। सिविलसर्जन ने रक्तबैंक का उद्देश्य समझाया कुछ लोगों का रक्त सबके काम आ सकता है और कुछ का वर्गीकरण किये जाने के बाद ख़ास ख़ास क़िस्म के लोगों और रोगों पर इस्तैमाल होता है। कमजोरों का और बीमारों का तथा जिनके रक्त में किसी प्रकार का दोष है उनका नहीं लिया जावेगा।'

इस व्याख्या को सुनकर अनेक आमन्त्रितों ने चैन की सांस ली। कलक्टर अंग्रेज़ था। मज़े की हिन्दुस्थानी बोल लेता था। कहने लगा, 'यह रुपये देने से भी बढ़कर अच्छा काम है। मेरे ख्याल में शायद इससे अच्छा परोपकारी काम और कोई नहीं। इसके लिये अनुशीलन समिति बन जानी चाहिये। आप जानते हैं अनुशीलन समिति किस को कहते हैं?'

नारायणप्रसाद वकील कुछ कहना चाहते थे कि कलक्टर खुद ही बोला, 'मिदनापूर में झगड़ा मिटाने के लिये यू० पी० गवर्नमेंट ने मुझको बंगाल भेजने के लिये दे दिया। वह समिति आदमियों को तंग करने के लिये बनी थी। यहाँ जो समिति बनेगी वह जनता को आराम पहुँचाने के लिये बनेगी।'

नारायणप्रसाद मुस्कराकर रह गये। कलक्टर ने पूछा, 'योजना को सफल किस तरह बनाया जावे।'

एक खान बहादुर साहब मीटिंग में थे। आधे सरकारी—पेन्शन पा रहे थे। बोले, 'एक सरकारी लारी पर डाक्टर साहब खून खींचने के सामान के साथ बैठ जावें और मुहल्ले-मुहल्ले जाकर खून इकट्ठा करें।'

वकील ने कहा, 'नब्बे फ़ी सदी दरवाज़े बन्द हो जायेंगे और सड़कों पर शायद छोकरों के सिवाय और कोई नज़र न आवेगा।'

कलक्टर—'मैं भी समझता हूँ कि इस कार्रवाई से कोई फ़ायदा नहीं होगा।'

सिविलसर्जन—'खून तो अस्पताल में ही लिया जा सकता है।'

आनरेरी मैजिस्ट्रेट—'तब एक फ़िहरिश्त बना ली जावे। अगली मीटिंग में पेश कर दी जावे।'

वकील—'जिससे आप पूछेंगे वही कहेगा कि आपका नाम फ़िहरिस्त में है या नहीं ?'

सिविलसर्जन— तब इसी मीटिंग के मौजूद लोगों से क्यों न आरम्भ किया जावे ?'

सब लोग एक दूसरे से, धीरे धीरे और जोर जोर से, गम्भीतापूर्वक और मज़ाक में छेड़छाड़ करने लगे।

आनरेरी मैजिस्ट्रेट ने वकील से कहा, 'आप तो जानते ही होंगे कि शायद ही कोई ऐसी बीमारी हो जो मुझको न हुई हो।'

अकस्मात कलक्टर की निगाह आनरेरी मैजिस्ट्रेट के ऊपर आ जमी। बोला, 'आप।' सेठ जी का गला सूख गया। बोले, 'मैं बिलकुल तैयार हूं। परन्तु मेरा खून अच्छा नहीं है। इसी साल साल्वर्सन और नं० ५९५ के टीके लिये हैं।'

खराब खून के इन समूचे सर्टिफिकटों के सामने वह प्रस्ताव रद हो गया। मुन्सिफ भी वहां मौजूद थे। शरीर में हड्डी हड्डी। एक डिप्टी कलक्टर ने उनसे पूछा। वह बिचारे बोले, यहां तो कहीं से और खून का मुहताज हूं।'

थोड़ी देर में कलक्टर ने देख लिया कि सब एक दूसरे पर टालने के लिये तैयार हैं, स्वयं कोई आगे नहीं आता। तब वह ज़रा खिसिया कर बोला, 'इस ज़िले के लोग सब बातों में पीछे हैं। फ़ौज़ को रंगरूट बहुत कम मिले हैं। रुपया भी काफ़ी नहीं मिला। इसीलिये मैंने यहां के लोगों के लिये तेल, कपड़ा वग़ैरह का कोटा बहुत कम रखा है, क्योंकि उनको ज्यादा की ज़रूरत नहीं है। यहां के लोग अधनंगे हैं।'

नारायणप्रसाद ने खट से कहा, 'और इस पर भी एक जमाना था जब मुग़ल बादशाहों की फ़ौज की हरावल की शाम इसी ज़िले से बरसा करती थी। लोगों को नहीं मालूम कि लड़ाई किसके लिये और क्यों लड़ी जा रही है। इसीलिये उनमें उत्साह नहीं है। यहाँ की जनता ग़रीब ज़रूर है, परन्तु उसका खून अच्छा है।'

कलक्टर ज़रा सहमा, परन्तु अपने को शीघ्र उबार कर क्षीण मुस्कराहट के साथ बोला, 'अब इसी की तो जाँच होनी है वकील साहब।'

'लोगों को अपने साथ लीजिये' नारायणप्रसाद ने कहा, 'और फिर उसके खून की सबलता और पवित्रता को देखिये।

कलक्टर ने देखा कि जनमत की धारा मीटिंग को प्रभावित करने जा रही है उसने विषयान्तर करके उदार मुद्रा धारण करते हुये कहा, 'जनता का आम तौर पर आजकल क्या हाल है?'

वकील साहब ने मीटिंग के उस छोटे से शान्त पोखरे में एक ढेला और पटक दिया। बोले, तीन शब्दों में जनता की वृत्ति बतला दी जा सकती है : Disappointment (निराशा)' Frustration (आशा-दमन), और nervousness (व्याकुलता)" कलक्टर ज़रा झिझका। बोला, "ओ, ओ यह तो political platform की बात चीत है। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि लोग क्या जबानी जमाखर्च ही करना जानते हैं या रक्तबैंक सरीखी संस्था में अपना खून देकर कुछ उपकार करने की भी उनमें हिम्मत है?"

नारायणप्रसाद को यह संकेत लग गया। बोले 'मेरा नाम सूची में सबसे पहला लिखिये। जितना चाहिए हो लीजिए।' कलक्टर ने चर्चा को ऊँचे स्तर पर उठाने की चेष्टा की। कहा, 'यह नहीं हो सकता वकील साहब। मैं पहले ही कर चुका हूँ। मेरा नम्बर पहला रहेगा। दूसरा मेरी पत्नी का रहेगा। वह मुझसे कह चुकी है। तीसरा आपका जरूर।'

मीटिंग का रुद्ध वातावरण खुल उठा। और लोगों ने भी नाम लिखवाये। तै हुआ कि लखनऊ से जब डाक्टर लोग साज सामान के साथ आवेंगे तब रक्तदान का समय बतला दिया जावेगा।

(३)

बात उन दिनों की है जब जापान से लड़ाई छिड़े कई महीने हो चुके थे और सिंगापुर जापान के हाथ जा चुका था तथा युक्तप्रान्त के हर शहर

और कस्बों में हवाई हमले से बचने के उपायों से लोग परेशान और पीड़ित हो रहे थे।

उस मीटिंग को हुये भी कई सप्ताह गुजर चुके थे। न कोई डाक्टर आये और न उनका साज सामान।

नारायणप्रसाद उस मीटिंग की बात को करीब करीब भूल गये। केवल उसका एक फल याद रहा—वह जितनी सरकारी कमीटियों और समितियों के मेम्बर थे उनमें से, सबसे, उनका नाम काट दिया गया। Disappointment. Frustration. Nervousness अपनी ही मीटिंग के मन्च पर इतनी बड़ी बात! नारायणप्रसाद कुछ दिनों के लिये बाहर चले गये। उन्हीं दिनों लखनऊ से रक्त लेने वाले डाक्टरों के आने का समाचार आया। तारीख़ और समय नियुक्त हो गया। इत्तफ़ाक़ से नारायणप्रसाद एक दिन पहले घर लौट आये। घर पर पड़े एक काग़ज के टुकड़े से तारीख और समय का बोध हो गया। सवेरे ८ बजे अस्पताल जाना था। रात चैन से सोये और सवेरे देर में सोकर उठे।

कलक्टर, उनकी पत्नी और डिप्टी कलक्टर, केवल इतने लोग अस्पताल में ठीक समय पर पहुँच गये। नारायणप्रसाद का पता न था।

कलक्टर प्रसन्न था। बोला, 'नारायणप्रसाद वकील नहीं आये? मैं जानता था। बात करना ही जानते हैं।'

एक डिप्टी कलक्टर ने जो नारायणप्रसाद के मित्र थे और जिनको परोपकार की यह ढकेला-ढकेली खल भी रही थी, कहा, 'वह धुन के पक्के हैं। आवेंगे।'

कलक्टर—'शायद। आज नहीं तो फिर कभी।'

डिप्टीकलक्टर—'नहीं हुजूर। मुझको विश्वास है, आज।'

कलक्टर ने ज़रा झल्लाकर कहा, 'मुझको नहीं है।'

उसी समय साइकिल अस्पताल की दिवाल से टिका कर नारायणप्रसाद खटखट करते हुये आ पहुँचे।

उक्त डिप्टी कलक्टर उछल पड़े। बोले, 'मैंने कहा था। वह चूक नहीं सकते।'

कलक्टर ने कहा, 'मैं आपको बधाई देता हूं वकील साहब!'

'किस बात पर?' नारायणप्रसाद ने परिस्थिति को तुरन्त परखकर पूछा।

'इस पर कि समय पर आ गये। आपकी हिम्मत के नमूने से लोग सबक़ लेंगे।'

नारायणप्रसाद ने कहा, 'इसमें हिम्मत की बात तो कुछ नहीं। बदन में खून बढ़ गया है। कुछ उग्रता बढ़ गयी है। वह कम हो जावेगी। अधिक स्वस्थ हो जाऊँगा।'

कलक्टर हँसने लगा।

कलक्टर ने पहले अपना खून दिया। अब उसकी पत्नी की बारी आई। वह ज़रा घबरा रही थी। उसने कलक्टर से खून देते समय पास ही खड़ा रहने के लिये कहा। पति का चेहरा ज़रा तमतमा गया। परन्तु वह उसके साथ चला गया। डिप्टी कलक्टर लोग अपने अपने खून की कमी की शिकायत करने लगे। इतने में नारायणप्रसाद का नम्बर आया।

किसी का कितना भी कम लोहू निकाला गया हो, परन्तु नारायणप्रसाद का पूरा ८ आउंस निकाला गया। नारायणप्रसाद टहलते टहलते घर चले आये।

(४)

दूसरे दिन एक पत्रकार मुलाकात (इंटरव्यू) के लिये और उनके चित्र के लिये नारायणप्रसाद के पास आये।

नारायणप्रसाद ने पूछा, 'मैंने ऐसा कौनसा बड़ा शेर मारा है जिसके कारण आप इतना परिश्रम करने आये हैं?'

पत्रकार ने कहा, 'शेर को आदमी क्या मारता है, बन्दूक की गोली मारती है। आपने उससे बड़ा काम किया है। अपना खून, अपना ही लोहू दे दिया।'

'जी हां। और बिना किसी पीड़ा और दर्द के। कितना बड़ा आश्चर्य है। अब आश्चर्यों का सूचीपत्र बढ़ाना पड़ेगा।' पत्रकार ने ज़िद की, परन्तु नारायणप्रसाद का हठ न टूट सका।

पत्रकार सोचता हुआ चला गया, 'शायद इस खबर के फैलने से मुवक्किलों में सनसनी फैल जायगी कि वकील साहब ने वकालत छोड़ दी और अब बैंक का हिसाब खून दे देकर बढ़ा रहे हैं।'

(५)

कुछ दिनों के उपरान्त रक्तबैंक की रसीद नारायणप्रसाद के पास आ गयी। रसीद में उनका रक्त ए वर्ग का लिखा था। अकस्मात उसी रोज कलक्टर से भेंट हो गयी। कलक्टर ने ज़रा उदासी के साथ कहा, 'अमेरिकन लोग हिन्दुस्तानी खून नहीं लेना चाहते हैं, परन्तु हिन्दुस्तानी रोगियों और घायलों को हां काफी तादाद में उसकी ज़रूरत है।'

नारायणप्रसाद बोले, मुझे तो खुशी है। मेरा खून मेरे भाइयों को ही मिले—मैं तो यही चाहता हूँ।'

कलक्टर ने फुसलाते हुये कहा, 'मज़दूरों और किसानों का खून बहुत अच्छा होगा। आपके कहने से मिल सकता है।'

नारायणप्रसाद ने प्रतिवाद किया, 'कभी नहीं। हर तरफ से हर तरह की जोंकें किसान मजदूरों का खून चूस रही हैं। रक्तबैंक में देने के लिये उसके पास बचा ही कितना है?'

घायल सिपाही

वह बढ़ई था। ग़रीब था। रानी लक्ष्मीबाई का सिपाही था। जनरल रोज़ ने झांसी को घेर लिया, रानी लक्ष्मीबाई और उनके सिपाहियों ने जी तोड़ कर युद्ध किया। झांसी के बहुत से सिपाही मारे गये, अनेक घायल हुये। आधी रात के लगभग रानी को थोड़े से अनुयायियों के साथ झांसी छोड़नी पड़ी जो पीछे रह गये उनमें से कुछ लड़ाई में मारे गये, कुछ आहत होकर मौत की घड़ियां गिनने लगे। बढ़ई सिपाही इन्हीं में से एक था।

झांसी में जनरल रोज़ की सेना विजन—क़त्लेआम कर रही थी। स्त्रियाँ अपने पुरुषों को बचाने के लिये सामने आ आ जातीं थीं और गोली खा-खा कर गिर-गिर जातीं थीं। जिनको वे बचाना चाहती थीं वे भी नहीं बच पा रहे थे। वध के लिये तत्पर जनरल रोज़ के सैनिक बदला लेने की भावना में पागल थ। पागलों जैसे शहर की गलियों से लेकर नगर-कोट तक घूम रहे थे। उनकी बन्दूकें उतावली थीं—आड़ी, तिरछी, ऊँचे उठी हुईं, नीचे घूमी हुईं, जैसे कार्तिक के मेघ और बवण्डर ने ज्वार के खेत में हलचल मचादी हो खून के फौहारे, चीत्कारों और कराहों के गगनभेदी नाद।

घायल बढ़ई सिपाही नगर-कोट के नीचे एक बड़ी मुहरी के पास ढेर सा पड़ा हुआ था। पास ही छोटे बड़े पत्थरों के बीच में उसकी भरी हुई बन्दूक़ लेटी हुई थी, परन्तु सिपाही के हाथों में इतना बल न था कि वह उसे उठाकर अपने कष्ट को समाप्त कर लेता। कुछ दूरी पर जो कुछ हो

रहा था वह उसकी कल्पना मात्र कर सकता था, साफ़—साफ़ नहीं दिखलाई पड़ रहा था दुश्मन की एक गोली मेरे सिर या सीने पर पड़ जाय तो कैसा अच्छा हो, उस घायल सिपाही की इच्छा थी। दुश्मन शायद उसको मरा हुआ समझकर उससे घृणा कर रहे थे, कोई पास न आ रहा था। घायल के निकट ही कोट की दीवार के नीचे से बहने वाली एक नाली थी—गन्दी नाली। घायल प्यासा था, परन्तु वह नाली सूखी थी।

एक गली में से यकायक एक झांसी निवासी भागता हुआ घायल सिपाही की दिशा में आया, पीछे—पीछे एक स्त्री। दोनो मानों यमराज के वज्रपाश से बचने के लिये हड़बड़ाते हुये भाग रहे हों।

उन दोनों के पीछे बन्दूक ताने हुये एक गोरा भी उसी गली मे से भागता हुआ आया। वे दोनों स्त्री पुरुष ऐसे कतराते हुये भाग रहे थे कि गोरा निशाना नहीं बाँध पा रहा था। परन्तु वे दोनों जानते थे कि यमराज के लक्ष्य से बच नहीं सकेंगे। पुरुष किंकर्तव्यविमूढ़ ठिठक गया थर्राता हुआ। आँखें मानों फट गई हों। स्त्री उसके सामने आ गई। गोरा हाँफ रहा था बन्दूक, कन्धे पर आसानी के साथ नहीं जम पा रही थी। गोरा जानता था कि क्षण दो क्षण का विलम्ब भले ही हो जाय, दोनों मे से एक भी नहीं बच पावेगा—स्त्री बच जाय तो अच्छा है जरा बग़ल काट कर निशाना बाँधूँ, नहीं बच पाती है तो, खैर, अङ्गरेजों के बाल बच्चों की हत्या में इन सब का हाथ रहा है, तो मरें।

परन्तु गोरे ने बन्दूक़ का चलाना तो क्या निशाना भी नहीं बाँध पाया था कि आवाज हुई 'धाड़।' उधर घायल के पास बन्दूक की नाल से निकले हुये धुएँ ने अपना आकार भी नहीं बना पाया था कि गोरा धम्म से जा गिरा।

न मालूम कहाँ से घायल सिपाही के हाथ में इतना बल आ गया था कि उसने निकट लेटी हुई बन्दूक़ उठाली, और कन्धे से जोड़कर गोरे पर दाग दी।

वह उन्नोरा नामक ग्राम का बढ़ई था, परन्तु था लक्ष्मीबाई का सिपाही।

वे दोनों स्त्री पुरुष कुछ समझे हों, वहाँ से दूसरी दिशा में भाग कर कहीं जा छिपे। यमराज का कोई दूसरा दूत न आ धमके कहीं से!

उस घायल सिपाही को अपने भीतर कुछ और शक्ति का अनुभव हुआ। वह रेंगता सरकाता हुआ मुहरी पर पहुँचा और धीरे-धीरे उसी मार्ग से बाहर हो गया।

कई दिन के उपरान्त वह अपने गांव उन्नोरा में पहुँच गया। चोट अच्छी हो गई और वह कई वर्ष तक जीवित रहा।

चोट अपना चिन्ह और परिणाम छोड़ गई परन्तु वह उसको खटकी कभी नहीं। वह उस चोट को लगभग भूल गया।

परन्तु क्या वह उस आल्हाद को कभी भूला जो उसको उन दो स्त्री पुरुष को बचाने से मिला था?